श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री का हर अक्षर शक्ति स्रोत

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०– २५३०२००

पुनर्मुद्रित सन् २०१२ **मूल्य : १०.०० रुपये**

चौबीस अक्षर—चौबीस शक्ति स्त्रोत

गायत्री मंत्र में २४ अक्षर हैं। इन्हें मिलाकर पढ़ने से ही इनका शब्दार्थ और भावार्थ समझ में आता है, पर शक्ति-साधना के संदर्भ में इनमें से प्रत्येक अक्षर का अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व और महत्त्व है। इन अक्षरों को परस्पर मिला देने से परम तेजस्वी सविता देवता से सद्बुद्धि को प्रेरित करने के लिए प्रार्थना की गई है और साधक को प्रेरणा दी गई है कि वह गायत्री की सर्वोपरि संपदा 'सद्बुद्धि' का—ऋतंभरा प्रज्ञा का महत्त्व समझे और अपने अंतराल में दूरदर्शिता का अधिकाधिक समावेश करे। यह प्रसंग अति महत्त्वपूर्ण होते हुए भी रहस्यमय तथ्य यह है कि महामंत्र का प्रत्येक अक्षर शिक्षाओं और सिद्धियों से भरा-पूरा है।

शिक्षा की दृष्टि से गायत्री मंत्र के प्रत्येक अक्षर में प्रमुख सद्गुणों का उल्लेख किया गया है और बताया गया है कि उनको आत्मसात करने पर मनुष्य देवोपम विशेषताओं से भर जाता है। अपना कल्याण करता है और अन्य असंख्यों को अपनी नाव पर बैठाकर पार लगाता है। हाड़-मांस से बनी और मल-मूत्र से सनी काया में जो कुछ विशिष्टता दिखाई पड़ती हैं, वे उसमें समाहित सत्प्रवृत्तियों से ही हैं। जिसके गुण-कर्म-स्वभाव में जितनी उत्कृष्टता है, वह उसी अनुपात से महत्त्वपूर्ण बनता है और महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त करके जीवन-सौभाग्य को हर दृष्टि से सार्थक बनाता है।

इन सद्गुणों की उपलब्धि में लोकशिक्षण, संपर्क एवं वातावरण के प्रभाव से भी बहुत कुछ प्रगति हो सकती है। किंतु अध्यात्म विज्ञान के अनुसार साधना उपक्रम द्वारा भी इन विभूतियों में से

जिसकी कमी दीखती है, जिसके संवर्द्धन की आवश्यकता अनुभव होती है, उसके लिए उपासनात्मक उपचार किए जा सकते हैं।

जिस प्रकार शरीर में कोई रासायनिक पदार्थ कम पड़ जाने से स्वास्थ्य लड़खड़ाने लगता है, उसी प्रकार उपर्युक्त चौबीस सद्‌गुणों में से किसी में न्यूनता रहने पर उसी अनुपात से व्यक्तित्व त्रुटिपूर्ण रह जाता है। उस अभाव के कारण प्रगति-पथ पर बढ़ने में अवरोध खड़ा होता है। फलतः पिछड़ापन लदा रहने से उन उपलब्धियों का लाभ नहीं मिल पाता, जिनके लिए मनुष्य जीवन का सुरदुर्लभ अवसर हस्तगत हुआ है। आहार के द्वारा एवं ओषधि, उपचार से शरीर की रासायनिक आवश्यकता पूरी हो जाती है, तो फिर स्वस्थता का आनंद मिलने लगता है। इसी प्रकार गायत्री उपासना के विशिष्ट उपचारों से सत्प्रवृत्तियों की कमी पूरी की जा सकती है। उस अभाव को पूरा करने पर स्वभावतः प्रखरता एवं प्रतिभा बढ़ती है। उसके सहारे मनुष्य अधिक पुरुषार्थ करता है—अधिक दूरदर्शिता का परिचय देता है। शारीरिक तत्परता और मानसिक तन्मयता बढ़ने से अभीष्ट प्रयोजन पूरा करने में सरलता रहने और सफलता मिलने लगती है। सत्प्रवृत्तियों की इसी परिणति को सिद्धियाँ कहते हैं।

गायत्री में समाहित शक्तियाँ और उनकी प्रतिक्रियाओं के नामों का उल्लेख अनेक साधना शास्त्रों में अनेक प्रकार से हुआ है। इनके नाम, रूपों में भिन्नता दिखाई पड़ती है। इस मतभेद या विरोधाभास से किसी असमंजस में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। एक ही शक्ति को विभिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त करने पर उसके विभिन्न परिणाम निकलते हैं। दूध पीने पर व्यायामप्रिय व्यक्ति पहलवान बनता है। विद्यार्थी की स्मरण शक्ति बढ़ती है। योगी का उस सात्त्विक आहार से साधना में मन लगता है। प्रसूता के स्तनों में दूध बढ़ता है। यह लाभ एक-दूसरे

से भिन्न हैं। इससे प्रतीत होता है कि दूध के गुणों का जो वर्णन किया गया है, उसमें मतभेद हैं। यह विरोधाभास ऊपरी है। भीतरी व्यवस्था समझने पर यों कहा जा सकता है कि हर स्थिति के व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार इससे लाभ पहुँचता है। यदि यह कहा जाता है तो दूध के गुणों में जो विरोधाभास जान पड़ता है, उसके लिए असमंजस न करना पड़ता। कई बार शब्दों के अंतर से भी वस्तु की भिन्नता मालूम पड़ती है। एक ही पदार्थ के विभिन्न भाषाओं में विभिन्न नाम होते हैं। उन्हें सुनने पर सहज बुद्धि को भ्रम हो सकता है और अनेक पदार्थों की बात चलती लग सकती है, पर जब यह प्रतीत होगा कि एक ही वस्तु के भावभेद से अनेक उच्चारण हो रहे हैं तो उस अंतर को समझने में देर नहीं लगती, जिससे एकता को अनेकता में समझा जा रहा था।

एक सूर्य के अनेक लहरों पर अनेक प्रतिबिंब चमकते हैं। व्यक्तियों की मनःस्थिति के अनुरूप एक ही उपलब्धि का प्रतिफल अनेक प्रकार का हो सकता है। धन को पाकर एक व्यक्ति व्यवसायी, दूसरा दानी, तीसरा अपव्ययी हो सकता है। धन के इन गुणों को देखकर उसकी भिन्न प्रतिक्रियाएँ झाँकने की बात अवास्तविक है। वास्तविक बात यह है कि हर व्यक्ति अपनी इच्छानुसार धन का सदुपयोग करके अभीष्ट प्रयोजन पूरे कर सकता है। गायत्री के २४ अक्षरों में सन्निहित चौबीस शक्तियों का भाव यह है कि मनुष्य की मौलिक विशिष्टताओं को उभारने में उनके आधार पर असाधारण सहायता मिलती है। इसे आंतरिक उत्कर्ष या देवी अनुग्रह दोनों में से किसी नाम से पुकारा जा सकता है। कहने-सुनने में इन दोनों शक्तियों में जमीन-आसमान जैसा अंतर दीखता है और दो भिन्न बातें कही जाती प्रतीत होती हैं। किंतु वास्तविकता यह है कि

व्यक्तित्व में बढ़ी हुई विशिष्टताएँ सुखद परिणाम उत्पन्न करती हैं और प्रगतिक्रम में सहायक सिद्ध होती हैं। इतना कहने से भी काम चलता है। भीतरी उत्कर्ष और बाहरी अनुग्रह वस्तुतः एक ही तथ्य के दो प्रतिपादन भर हैं। उन्हें अन्योन्याश्रित भी कहा जा सकता है।

गायत्री की चौबीस शक्तियों का वर्णन शास्त्रों ने अनेक नाम-रूपों से किया है। उनके क्रम में भी अंतर है। इतने पर भी इस मूल तथ्य में रत्ती भर भी अंतर नहीं आता कि इस महाशक्ति के अवलंबन से मनुष्य की उच्चस्तरीय प्रगति का द्वार खुलता है और जिस दिशा में भी उसके कदम बढ़ते हैं उसमें सफलता का सहज दर्शन होता है।

गायत्री की चौबीस शक्तियों की उपासना करने के लिए "शारदा तिलक-तंत्र" का मार्गदर्शन इस प्रकार है—

अन्यान्य ग्रंथों में गायत्री के एक-एक अक्षर के साथ जुड़ी हुई शक्ति यों का वर्णन कई प्रकार से हुआ है। कहीं उन्हें शक्ति, कहीं मातृका, कहीं कला आदि नामों से संबोधित किया गया है। गायत्री मंत्र के अक्षर एवं उनसे संबंधित कलाओं का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

ततः षडङ्गान्यभ्यर्चेत्केसरेषु यथाविधि।
प्रह्लादिनीं प्रभां पश्चान्नित्यां विश्वम्भरां पुनः॥
विलासिनीप्रभावत्यौ जयां शान्तिं यजेत्पुनः।
कान्तिं दुर्गासरस्वत्यौ विश्वरूपां ततः परम्॥
विशालासंज्ञितामीशां व्यापिनीं विमलां यजेत्।
ततोऽपहारिणीं सूक्ष्मां विश्वयोनिं जयावहाम्॥
पद्मालयां परां शोभां पद्मरूपां ततोऽर्चयेत्।
ब्राह्मयाद्याः सारुणा बाह्ये पूजयेत् प्रोक्तलक्षणाः॥

—शारदा. २१-२३ से २६

पूजन उपचारों से षडंग पूजन के बाद 'आह्लादिनी, 'प्रभा', 'नित्या' तथा 'विश्वंभरा' का यजन (पूजन) करें। पुनः 'विलासिनी',

'प्रभावती', 'जया' और 'शांति' का अर्चन करना चाहिए। इसके बाद 'कांति', 'दुर्गा', 'सरस्वती' और 'विश्वरूपा' का पूजन करें। पुनः 'विशाल संज्ञावाली', 'ईशा', 'व्यापिनी' और 'विमला' का यजन करना चाहिए। इसके अनंतर 'अपहारिणी', 'सूक्ष्मा', 'विश्वयोनि', जयावहा, 'पद्मालया,' 'परा शोभा' तथा 'पद्मरूपा' आदि का यजन करें। 'ब्राह्मी', 'सारुणा' का बाद में पूजन करना चाहिए।

गायत्री के चौबीस अक्षर

१. तत् २. स ३. वि ४. तुः ५. व ६. रे ७. णि ८. यं ९. भ १०. र्गो ११. दे १२. व १३. स्य १४. धी १५. म १६. हि १७. धि १८. यो १९. यो २०. नः २१. प्र २२. चो २३. द २४. यात्।

चौबीस अक्षरों से संबंधित चौबीस कलाएँ

१. तापिनी, २. सफला, ३. विश्वा, ४. तुष्टा, ५. वरदा, ६. रेवती, ७. सूक्ष्मा, ८. ज्ञाना, ९. भर्गा, १०. गोमती, ११. दर्विका, १२. थरा, १३. सिंहिका, १४. ध्येया, १५. मर्यादा, १६. स्फुरा, १७. बुद्धि, १८. योगमाया, १९. योगोत्तरा, २०. धरित्री, २१. प्रभवा, २२. कुला, २३. दृष्या, २४. ब्राह्मी।

चौबीस अक्षरों से संबंधित चौबीस मातृकाएँ

१. चंद्रकेश्वरी, २. अजितबला, ३. दुरितारि, ४. कालिका, ५. महाकाली, ६. श्यामा, ७. शांता, ८. ज्वाला, ९. तारिका, १०. अशोका, ११. श्रीवत्सा, १२. चंडी, १३. विजया, १४. अंकुशा, १५. पन्नगा, १६. निर्वाक्षी, १७. वेला, १८. धारिणी, १९. प्रिया, २०. नरदत्ता, २१. गांधारी, २२. अंबिका, २३. पद्मावती, २४. सिद्धायिका।

सामान्य दृष्टि से कलाएँ और मातृकाएँ अलग-अलग प्रतीत होती हैं। किंतु तात्त्विक दृष्टि से देखने पर उन दोनों का अंतर समाप्त हो जाता है। उन्हें श्रेष्ठता की सामर्थ्य कह सकते हैं और उनके नामों के अनुरूप उनके द्वारा उत्पन्न होने वाले सत्परिणामों का अनुमान लगा सकते हैं।

समग्र गायत्री को सर्व विघ्न विनाशिनी-सर्वसिद्धि प्रदायनी कहा गया है। संकटों का संवरण और सौभाग्य संवर्द्धन के लिए उसका आश्रय लेना सदा सुखद परिणाम ही उत्पन्न करता है। तो भी विशेष प्रयोजनों के लिए उसके २४ अक्षरों में पृथक्-पृथक् प्रकार की विशेषताएँ भरी हैं। किसी विशेष प्रयोजन की सामयिक आवश्यकता पूरी करने के लिए उसकी विशेष शक्तिधारा का भी आश्रय लिया जा सकता है। चौबीस अक्षरों की अपनी विशेषताएँ और प्रतिक्रियाएँ हैं, जिन्हें सिद्धियाँ भी कहा जा सकता है। ये इस प्रकार बताई गई हैं—

१. आरोग्य, २. आयुष्य, ३. तुष्टि, ४. पुष्टि, ५. शांति, ६. वैभव, ७. ऐश्वर्य, ८. कीर्ति, ९. अनुग्रह, १०. श्रेय, ११. सौभाग्य, १२. ओजस्, १३. तेजस्, १४. गृहलक्ष्मी, १५. सुसंतति, १६. विजय, १७. विद्या, १८. बुद्धि, १९. प्रतिभा, २०. ऋद्धि, २१. सिद्धि, २२. संगति, २३. स्वर्ग, २४. मुक्ति।

जहाँ उपलब्धियों की चर्चा होती है, वहाँ शक्तियों का भी उल्लेख होता है। शक्ति की चर्चा-सामर्थ्य का स्वरूप निर्धारण करने के संदर्भ में होती है। बिजली एक शक्ति है। विज्ञान के विद्यार्थी उसका स्वरूप और प्रभाव अपने पाठ्यक्रम में पढ़ते हैं। इस जानकारी के बिना उसके प्रयोग करते समय जो अनेकानेक समस्याएँ पैदा होती हैं,उनका समाधान नहीं हो सकता। प्रयोक्ता की जानकारी इस प्रसंग में जितनी अधिक होगी, वह उतनी ही

सफलतापूर्वक उस शक्ति का सही रीति से प्रयोग करने तथा अभीष्ट लाभ उठाने में सफल हो सकेगा। प्रयोग के परिणाम को सिद्धि कहते हैं। सिद्धि अर्थात् लाभ। शक्ति अर्थात् पूँजी। शक्तियाँ सिद्धियों की आधार हैं। शक्ति के बिना सिद्धि नहीं मिलती। दोनों को अन्योन्याश्रित कहा जा सकता है। इतने पर भी पृथकता तो माननी ही पड़ेगी।

गायंत्री के चौबीस अक्षरों में जो पृथक्-पृथक् शक्तियाँ हैं, उनके नाम शास्त्रकारों ने प्राचीनकाल की आध्यात्मिक भाषा में बतलाए हैं। उस समय हर शक्ति को एक देवी के रूप में अलंकृत किया जाता था। देवी का अर्थ अब तो अंतरिक्षवासिनी अदृश्य महिला विशेष मानने का भ्रम चल पड़ा है, पर प्राचीनकाल में देवी शब्द दिव्यशक्तियों के लिए ही प्रयोग किया जाता था। गायत्री की २४ शक्तियों का शास्त्रीय उल्लेख इस प्रकार है—

वर्णानां शक्तयः काश्च ताः शृणुष्व महामुने।
वामदेवी प्रिया सत्या विश्वा भद्रा विलासिनी॥
प्रभावती जया शांता कांता दुर्गा सरस्वती।
विद्रुमा च विशालेशा व्यापिनी विमला तथा॥
तमोऽपहारिणी सूक्ष्मा विश्वयो निर्जया वशा।
पद्मालया पराशोभा भद्रा च त्रिपदा स्मृता॥
चतुर्विंशतिवर्णानां शक्तयः समुदाहृताः।

—*देवी भागवत १२.२.१-३*

हे मुनि! अब सुनो कि गायत्री के चौबीस अक्षरों में कौन-कौन चौबीस शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। १. वामदेवी, २. सत्या, ३. प्रिया, ४. विश्वा, ५. भद्र विलासिनी, ६. प्रभावती, ७. शांता, ८. कांता, ९. दुर्गा, १०. सरस्वती, ११. विद्रुमा, १२. विशालक्षा, १३. व्यापिनी,

१४. विमला, १५. तमोपहारिणी, १६. सूक्ष्मा, १७. विश्वयोनि, १८. जया, १९. वशा, २०. पद्मलया, २१. परा, २२. शोभा, २३. भद्रा, २४. त्रिपदा।

पिंड को ब्रह्मांड की छोटी प्रतिकृति माना गया है। वृक्ष की सारी सत्ता छोटे-से बीज में भरी रहती है। सौर मंडल की पूरी प्रक्रिया छोटे-से परमाणु में ठीक उसी तरह काम करती देखी जा सकती है। मनुष्य की शारीरिक और मानसिक संरचना का छोटा रूप शुक्राणु में विद्यमान रहता है। यह "**महतोमहियान् का अणोरणीयान्**" में दर्शन है। छोटी-सी 'माइक्रो' फिल्म पर सुविस्तृत ग्रंथों का चित्र उतर आता है। जीव में ब्रह्म की सारी विभूतियाँ और शक्तियाँ विद्यमान हैं। ब्रह्म का विस्तार यह ब्रह्मांड है। जीव का विस्तार शरीर में है। मानवी काया यों हाड़-मांस की बनी दीखती है और मल-मूत्र की गठरी प्रतीत होती है, पर उसकी मूल सत्ता, जो गंभीर विवेचन करने पर प्रतीत होती है, वह है—जिससे इस छोटे-से कलेवर में वह सब विद्यमान मिलता है, जो विराट विश्व में दृष्टिगोचर होता है।

स्थूल दृष्टि से स्थूल का दर्शन होता है और सूक्ष्म दृष्टि से सूक्ष्म का। चर्म चक्षुओं से सीमित आकार-प्रकार दूरी की वस्तुएँ देखी जा सकती हैं। शक्तिशाली माइक्रोस्कोप अदृश्य वस्तुओं को भी दृश्य रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। दूरबीनों से वे दूरवर्ती वस्तुएँ दीखती हैं, जिन्हें साधारण दृष्टि से देख सकना संभव नहीं है। ज्ञान चक्षुओं से सूक्ष्मजगत की स्थिति को भली प्रकार जाना जा सकता है। अर्जुन को, यशोदा को भगवान कृष्ण ने ज्ञान चक्षुओं से ही अपने विराट रूप के दर्शन कराए थे। उसी माध्यम से राम के वास्तविक रूप का साक्षात्कार कौशल्या और काकभुशुंडि को हुआ था। उसी दृष्टि से देख सकना जिस किसी के लिए भी संभव हुआ है, वह अपनी ही मानवी-काया में देवशक्तियों

की उपस्थिति सत्प्रवृत्तियों के रूप में स्पष्टतः देखता है। प्रसुप्त स्थिति में तो जीवित मनुष्य भी मृतकवत् पड़ा रहता है, पर जाग्रत् की स्थिति में पहुँचकर वही प्रबल पुरुषार्थ करता और अपनी प्रखरता का परिचय देता है। मानवी-काया वन-मानुष के, नर-वानर के समतुल्य इसलिए बनी रहती है कि उसकी देवात्मा प्रसुप्त स्थिति में पड़ी रहती है। साधन, उपचारों की सहायता से जो उसे जगा लेते हैं, उन्हें दिव्यशक्ति संपन्न सिद्धपुरुष बनने में देर नहीं लगती।

मानवी सत्ता में देवशक्तियों की उपस्थिति का वर्णन करते हुए भगवान् शिव-पार्वती के सम्मुख रहस्योद्घाटन करते हैं—

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकः॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तंते पीठदेवताः॥
सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ।
नभोवायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।
मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते॥
जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः।
ब्रह्मांडसंज्ञके देहे यथादेशं व्यवस्थितः॥

—*शिव संहिता २.१-५*

इसी देह में मेरु, सप्तद्वीप, सरिता, सागर, शैल, क्षेत्रपालक, ऋषि, मुनि, नक्षत्र, ग्रह पीठ, पीठ देवता, शिव, चंद्र, सूर्य, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तीनों लोक के सब प्राणी निवास करते हैं।

जो ब्रह्मांड में हैं वही पिंड में हैं। इस रहस्य को जो जान सकता है वही योगी है।

किस संस्थान में किस देवशक्ति का निवास है और वहाँ कौन-सी विशिष्ट शक्ति छिपी पड़ी है इसका उल्लेख शास्त्रकारों ने

संकेत रूप से किया है। न्यास, कवच, रक्षाविधान आदि के माध्यम से पूजा-प्रार्थना करते हुए यह अनुभव किया जा सकता है कि इस स्थान पर विद्यमान अमुक शक्ति का नव जागरण हो रहा है, उस केंद्र पर ब्रह्मांड में संव्याप्त दिव्य कामनाओं का अवतरण हो रहा है। स्थापना, श्रद्धा, अनुभूति एवं उपलब्धि के चार चरण ध्यान-धारणा में प्रयुक्त होते हैं। यह संगति इन उपचारों के सहारे भली प्रकार बैठ जाती है। फलतः न्यास, कवच, रक्षाविधान आदि कृत्यों के माध्यम से शरीर में देवशक्तियों के जागरण एवं अवतरण का द्वार खुल जाता है। इन उपासनात्मक विधि-विधानों का शास्त्रीय उल्लेख इस प्रकार है—

न्यास विधान

ॐ तत्पादांगुलिपर्वभ्यो नमः (पैरों की उँगलियों की गाँठों को)
ॐ सपादांगुलिभ्यो नमः (पैरों की उँगलियों को)
ॐ विजंघाभ्यां नमः (दोनों जंघाओं को)
ॐ तुर्जानुभ्यां नमः (दोनों जानुओं को)
ॐ व ऊरुभ्यां नमः (कटि के नीचे के भाग को)
ॐ रे शिश्नाय नमः (शिश्न को)
ॐ णि वृषणाभ्यां नमः (वृषण को)
ॐ यं कट्यै नमः (कटि को)
ॐ भर्नाभ्यै नमः (नाभि को)
ॐ गो उदराय नमः (पेट को)
ॐ दे स्तनाभ्यां नमः (दोनों स्तनों को)
ॐ व उरुसे नमः (छाती को)
ॐ स्य कंठाय नमः (कंठ को)
ॐ धी दंतेभ्यो नमः (दाँतों को)
ॐ म तालुने नमः (तालु को)

ॐ हि नासिकायै नमः (नासिका को)
ॐ धि नेत्राभ्यां नमः (नेत्रों को)
ॐ यो भ्रूभ्यां नमः (भौंहों को)
ॐ यो ललाटाय नमः (ललाट को)
ॐ नः पूर्वमुखाय नमः (मुख के पूर्वी भाग को)
ॐ प्र दक्षिणमुखाय नमः (मुख के दक्षिणी भाग को)
ॐ चो पश्चिममुखाय नमः (मुख के पश्चिमी भाग को)
ॐ द उत्तरमुखाय नमः (मुख के उत्तर भाग को)
ॐ यात् मूर्ध्ने नमः (सिर को)

बाएँ हाथ पर जल रखकर दाहिने हाथ की पाँचों अँगुलियों को डुबाना और फिर उन भीगी उँगलियों को निर्धारित स्थानों पर स्पर्श करना न्यास कहलाता है। इस न्यास कृत्य से उन स्थानों में सन्निहित देव शक्तियों में अंतः जागृति उत्पन्न होती है।

रक्षा बंधन

तद्वर्णः पातु मूर्द्धानं सकारः पातु भालकम्।

तत् वर्ण मूर्धा की, 'स' कार भाल की रक्षा करे।

चक्षुषी मे विकारस्तु श्रोत्रे रक्षेत्तुकारकः।
नासापुटे वकारो मे रेकारस्तु कपालकम्॥

'वि' मेरे नेत्रों की और 'तु' कार कर्णों की रक्षा करे, 'व' कार नासापुट की ओर 'रे' कार कपाल की रक्षा करे।

णिकारस्त्वधरोष्ठे च यकारस्तूर्ध्व ओष्ठके।
आस्य मध्ये भकारस्तु गोकारस्तु कपोलयोः॥

'णि' कार नीचे के ओष्ठ की 'य' कार उपरोष्ठ की, मुख के मध्य में 'भ' कार 'गो' कार दोनों कपालों की रक्षा करें।

देकारः कण्ठ देशे च वकारः स्कंध देशयोः।
स्यकारो दक्षिणं हस्तं धीकारो वाम हस्तकम्॥

'दे' कार कण्ठ प्रदेश की, 'व' कार दोनों कंधों की, 'स्य' कार दाएँ हाथ की तथा 'धी' यह बाँये हाथ की रक्षा करें।

मकारो हृदयं रक्षेद्धिकारो जठरं तथा।
धिकारो नाभिदेशं तु यो कारस्तु कटि द्वयम्॥

'म' कार हृदय की रक्षा करे, 'हि' कार पेट की, 'धि' कार नाभि की और 'यो' कार कटि द्वय की रक्षा करे।

गुह्यं रक्षतु यो कार ऊरू मे नः पदाक्षरम्।
प्रकारो जानुनी रक्षेच्चोकारो जंघ देशयोः॥

'यो' कार गुह्य प्रदेश की रक्षा करे, दोनों उरुओं की 'नः' पद रक्षा करे। 'प्र' कार दोनों घुटनों की रक्षा करे। 'च' कार जंघा प्रदेश की रक्षा करे।

दकारो गुल्फदेशे तु यात्कारः पादयुग्मकम्॥

'द' कार गुल्फ की रक्षा करे, 'यात्' पद दोनों पैरों की रक्षा करे।

बाँई हथेली ऊपर-दाहिनी नीचे रखकर उस संयुक्त करतल पृष्ठ का निर्धारित स्थानों पर स्पर्श करना रक्षा विधान है। दूसरी विधि यह भी है कि हाथ जोड़कर निर्धारित स्थानों पर देव- शक्तियों के अवतरण होने और अवयवों की स्थूल शक्ति तथा वहाँ विद्यमान दिव्यशक्ति के संरक्षण, अभिवर्द्धन का उत्तरदायित्व निभा लेने की भावना करे।

देवशक्तियों के जागरण एवं अवतरण की अनुभूति प्रायः दो रूपों में होती है। प्रथम रंग-दूसरा गंध। ध्यानावस्था में भीतर एवं बाहर किसी पुष्प विशेष की गंध भीतर से बाहर को उभरती प्रतीत हो तो समझना चाहिए कि गायत्री के अक्षरों में सन्निहित अमुक शक्ति का उभार विशेष रूप से हो रहा है। इस अनुभूति के लिए २४ पुष्पों का उदाहरण दिया गया है। उनके रंग या गंध की अंतः अनुभूति के

आधार पर देवशक्तियों का अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसा भी कहा जाता है कि अमुक शब्द-शक्तियों की साधना में इन फूलों का उपयोग विशेष सहायक सिद्ध होता है।

अक्षरों और पुष्पों की संगति का उल्लेख इस प्रकार है—

अतः परं वर्णवर्णान्व्याहरामि यथातथम्।
चम्पका अतसी पुष्पसन्निभं विद्रुमं तथा॥
स्फटिकाकारकं चैव पद्मपुष्पसमप्रभम्।
तरुणादित्यसंकाशं शंखकुंन्देन्दुसन्निभम्॥
प्रवाल पद्मपत्राभं पद्मरागसमप्रभम्।
इंद्रनीलमणिप्रख्यं मौक्तिकं कुंकुमप्रभम्॥
अंजनाभं च रक्तं च वैदूर्यं क्षौद्रसन्निभम्।
हारिद्रकुन्ददुग्धाभं रविकांतिसमप्रभम्॥
शुकपुच्छनिभं तद्वच्छतपत्रनिभं तथा।
केतकीपुष्पसंकाशं मल्लिकाकुसुमप्रभम्॥
करवीरश्च इत्येते क्रमेण परिकीर्तिताः।
वर्णाः प्रोक्ताश्च वर्णानां महापापविशोधनाः॥

—देवी भागवत १२.२.४ से १०

गायत्री महामंत्र के २४ अक्षरों की प्रकाश किरणों के २४ रंग नीचे दिए पदार्थों तथा पुष्पों के रंग जैसे समझने चाहिए।

१. चंपा, २. अलसी, ३. स्फटिक, ४. कमल, ५. सूर्य, ६. कुंदेंदु, ७. शंख, ८. प्रवाल, ९. पद्मपत्र १०. पद्मराग, ११. इंद्रनील, १२. मुक्ता, १३. कुंकुम, १४. अंजन, १५. वैदूर्य, १६. हल्दी, १७. कुंद, १८. दुध, १९. सूर्यकांत, २०. शुक की पूँछ, २१. शतपत्र, २२. केतकी, २३. मल्लिका, २४. कनेर।

किस अक्षर का नियोजन किस स्थान पर हो इस संदर्भ में भी मतभेद पाए जाते हैं। इन बारीकियों में न उलझकर हमें इतना ही मानने से भी काम चल सकता है कि इन स्थानों में विशेष शक्तियों

का निवास है और उन्हें गायत्री-साधना के माध्यम से जगाया जा सकता है। पौष्टिक आहार-विहार से शरीर के समस्त अवयवों का परिपोषण होता है। रोग निवारक ओषधि से किसी भी अंग में छिपी बीमारी के निराकरण का लाभ मिलता है, इसी प्रकार समग्र गायत्री उपासना साधारण रीति से करने पर भी विभिन्न अवयवों में विद्यमान देवशक्तियाँ समर्थ बनाई जा सकती हैं। सामान्यतया: विशिष्ट अंग न्यास की अतिरिक्त आवश्यकता नहीं पड़ती। संयुक्त साधना से ही संतुलित उत्कर्ष होता रहता है।

वेदमंत्र का संक्षिप्त रूप बीजमंत्र कहलाता है। वेद रूपी वृक्ष का सार, संक्षेप बीज है। मनुष्य का बीज वीर्य है। समूचा काम विस्तार बीज में सन्निहित रहता है। गायत्री के तीन चरण हैं। इन तीनों का एक-एक बीज "भूः, भुवः, स्वः" है। इस व्याहृति भाग का भी बीज है—ॐ। यह समग्र गायत्री मंत्र की बात हुई। प्रत्येक अक्षर का भी एक-एक बीज है। उसमें उस अक्षर की सार-शक्ति विद्यमान है। तांत्रिक प्रयोजनों में बीज मंत्र का अत्यधिक महत्त्व है। इसलिए गायत्री-मृत्युंजय जैसे प्रख्यात मंत्रों की भी एक या कई बीजों समेत उपासना की जाती है। चौबीस अक्षरों के २४ बीज इस प्रकार हैं—

१. ॐ, २. ह्रीं, ३. श्रीं, ४. क्लीं, ५. हों, ६. जूं, ७. यं, ८. रं, ९. लं, १०. वं, ११. शं, १२. सं, १३. ऐं, १४. क्रीं, १५. हुं, १६. ह्रीं, १७. पं, १८. फं, १९. टं, २०. ठं, २१. डं, २२. ढं, २३. क्षं, २४. लृं।

यह बीज मंत्र व्याहृतियों के पश्चात् एवं मंत्र-भाग से पूर्व लगाए जाते हैं। 'भूर्भुवः स्वः' के पश्चात् 'तत्सवितुः' पहले का स्थान ही बीज लगाने का स्थान है। 'प्रचोदयात्' के पश्चात् भी इन्हें लगाया जाता है। ऐसी दशा में उसे संपुट कहा जाता है। बीज या संपुट में से किसे, कहाँ लगाना चाहिए, इसका निर्णय किसी अनुभवी के परामर्श से

करना चाहिए। बीज-विधान, तंत्र-विधान के अंतर्गत आता है। इसलिए इनके प्रयोग में विशेष सतर्कता की आवश्यकता रहती है।

प्रत्येक बीज मंत्र का एक यंत्र भी है। इन्हें अक्षर-यंत्र या बीज यंत्र कहते हैं। तांत्रिक उपासनाओं में पूजा-प्रतीक में चित्र-प्रतीक की भाँति किसी धातु पर खोदे हुए यंत्र की भी प्रतिष्ठापना की जाती है और प्रतिमा-पूजन की तरह यंत्र का भी पंचोपचार या षोडशोपचार पूजन किया जाता है। दक्षिण-मार्गी साधनाओं में प्रतिमा-पूजन का जो स्थान है, वही वाममार्गी उपासना उपचार में यंत्र-स्थापना का है, गायत्री यंत्र विख्यात है। बीजाक्षरों से युक्त २४ यंत्र उसके अतिरिक्त हैं। इन्हें २४ अक्षरों में सन्निहित २४ शक्तियों की प्रतीक-प्रतिमा कहा जा सकता है।

चौबीस अक्षर चौबीस प्रत्यक्ष देवता

गायत्री मंत्र के २४ अक्षरों को २४ देवताओं का शक्ति बीज मंत्र माना गया है। प्रत्येक अक्षर का एक देवता है। प्रकारांतर से इस महामंत्र को २४ देवताओं का एक संघ-समुच्चय या संयुक्त परिवार कह सकते हैं। इस परिवार के सदस्यों की गणना के विषय में शास्त्र बतलाते हैं—

गायत्री मंत्र का एक-एक अक्षर, एक-एक देवता का प्रतिनिधित्व करता है। इन २४ अक्षरों की शब्द-शृंखला में बँधे हुए २४ देवता माने गए हैं—

गायत्र्या वर्णमेकैकं साक्षात् देवरूपकम्।
तस्मात् उच्चारणं तस्य त्राणायैव भविष्यति॥

—गायत्री संहिता

अर्थात्—गायत्री का एक-एक अक्षर साक्षात् देव स्वरूप है। इसलिए उसकी आराधना से उपासक का कल्याण ही होता है।

दैवतानि शृणु प्राज्ञ तेषामेवानुपूर्वशः ।
आग्नेयं प्रथमं प्रोक्तं प्राजापत्यं द्वितीयकम्॥

तृतीयं च तथा सौम्यमीशानं च चतुर्थकम्।
सावित्रं पञ्चमं प्रोक्तं षष्ठमादित्यदैवतम्॥
बार्हस्पत्यं सप्तमं तु मैत्रावरुणमष्टमम् ।
नवमं भगदेवत्यं दशमं चार्यमैश्वरम् ॥
गणेशमेकादशमं त्वाष्ट्रं द्वादशमं स्मृतम्।
पौष्णं त्रयोदशं प्रोक्तमैंद्राग्न्यं च चतुर्दशम्॥
वायव्यं पंचदशमं वामदेव्यं च षोडशम्।
मैत्रावरुणदेवत्यं प्रोक्तं सप्तदशाक्षरम् ॥
अष्टादशं वैश्वदेवमुनविंशं तु मातृकम् ।
वैष्णवं विंशतितमं वसुदैवतमीरितम् ॥
एकविंशतिसंख्याकं द्वाविंशं रुद्रदैवतम्।
त्रयोविंशं च कौबेरमाश्विनं तत्त्वसंख्यकम्॥
चतुर्विंशतिवर्णानां देवतानां च संग्रहः।

—गायत्री तंत्र प्रथम पटल

हे प्राज्ञ ! अब गायत्री के २४ अक्षरों में विद्यमान २४ देवताओं के नाम सुनो—१. अग्नि, २. प्रजापति, ३. चंद्रमा, ४. ईशान, ५. सावित्री, ६. आदित्य, ७. बृहस्पति, ८. मित्रावरुण, ९. भग, १०. ईश्वर, ११. गणेश, १२. त्वष्टा, १३. पूषा, १४. इंद्राग्नि, १५. वायु, १६. वामदेव, १७. मैत्रावरुण, १८. वैश्वदेव, १९. मातृक, २०. विष्णु, २१. वसुगण, २२. रुद्रगण, २३. कुबेर, २४. अश्विनीकुमार।

छंदशास्त्र की दृष्टि से चौबीस अक्षरों के तीन विराम वाले पद्य को 'गायत्री' कहते हैं। मंत्रार्थ की दृष्टि से उसमें सविता तत्त्व का ध्यान और प्रज्ञा-प्रेरणा का विधान सन्निहित है। साधना-विज्ञान की दृष्टि से गायत्री मंत्र का हर अक्षर बीज मंत्र है। उन सभी का स्वतंत्र अस्तित्व है। उस अस्तित्व के गर्भ में एक विशिष्ट शक्ति-प्रवाह समाया हुआ है।

गुलदस्ते में कई प्रकार के फूल होते हैं। उनके गुण, रूप, गंध आदि में भिन्नता होती है। उन सबको एक सूत्र में बाँधकर, एक पात्र में सजाकर रख दिया जाता है, तो उसका समन्वित अस्तित्व एक विशिष्ट शोभा-सौंदर्य का प्रतीक बन जाता है। गायत्री मंत्र को एक ऐसा ही गुलदस्ता कहा जा सकता है, जिसमें २४ अक्षरों के अलग-अलग सामर्थ्य से भरे-पूरे प्रवाहों का समन्वय है।

औषधियों में कई प्रकार के रासायनिक पदार्थ मिले होते हैं। उनके पृथक्-पृथक् गुण हैं, पर उनका समन्वय एक विशिष्ट गुणयुक्त बन जाता है। गायत्री को एक ऐसी ओषधि कह सकते हैं, जिसमें बहुमूल्य शक्ति-तत्त्व घुले हैं।

मशीनें भिन्न-भिन्न छोटे-छोटे कलपुर्जों से मिलकर बनती है। हार में अनेक मणिमुक्ता गुँथे होते हैं। सेना में कितने ही सैनिक रहते हैं। शरीर में कितनी ही नस-नाड़ियाँ हैं। कपड़े में कितने ही धागे होते हैं। इन सबके समन्वय से विशिष्ट क्षमता उत्पन्न होती है। गायत्री का हर घटक महत्त्वपूर्ण है, पर उनका समन्वय जब संयुक्त शक्ति के रूप में प्रकट होता है, तो उस समन्वय की सामर्थ्य असीम हो जाती है।

एक विशेष पर्वतीय प्रदेश की भूमि, वहाँ की वायु, वहाँ की वनस्पतियों और रासायनिक पदार्थों के सम्मिश्रण के कारण गंगोत्री से आरंभ होने वाला जल विशेष प्रकार के अद्‌भुत गुणों वाला बन गया। इसी प्रकार चौबीस अक्षरों से, उपयोगी तत्त्वों का कारणवश सम्मिश्रण हो जाने से आंतरिक आकाश में एक विद्युन्मयी सूक्ष्म सरिता बह निकली। इस अध्यात्म गंगा का नाम गायत्री रखा गया। जिस प्रकार गंगा नदी में स्नान करने से शारीरिक व मानसिक स्वस्थता प्राप्त होती है, उसी प्रकार उस आकाशवाहिनी विद्युन्मयी गायत्री शक्ति की समीपता से आंतरिक एवं बाह्य बल तथा वैभवों की उपलब्धि होती है।

गायत्री जप द्वारा उत्पन्न हुआ शक्तिशाली वर्तुल-प्रवाह केवल निखिल ब्रह्मांड में परिभ्रमण नहीं करता, वरन् पिंड में शरीर के भीतर भी ऐसी ही हलचल उत्पन्न होती है। महामंत्र के २४ अक्षर शरीर के भीतर भी ऐसा ही परिभ्रमण बनाते हैं और २४ उपत्यिकाओं को बार-बार स्पर्श करके उनमें हल्का-फुल्का गुदगुदी जैसा स्पंदन करते हैं। आंतरिक जागृति का यह सुकोमल क्रिया-कलाप स्वसंचालित रीति-नीति से गतिशीत रहता है और कालांतर में साधक को असाधारण आत्मशक्ति से संपन्न कर देता है।

'मार्कंडेय पुराण' में शक्ति अवतार की कथा इस प्रकार है कि सब देवताओं से उनका तेज एकत्रित किया गया और उनकी सम्मिलित शक्ति का संग्रह-समुच्चय आद्यशक्ति के रूप में प्रकट हुआ। इस कथानक से स्पष्ट है कि स्वरूप एक रहने पर भी उसके अंतर्गत विभिन्न घटकों का सम्मिलन-समावेश है। गायत्री के २४ अक्षरों की विभिन्न शक्तिधाराओं को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि महा समुद्र में अनेक महानदियों ने अपना अनुदान समर्पित-विसर्जित किया है। फलतः उन सबकी विशेषताएँ भी इस मध्य केंद्र में विद्यमान हैं। २४ अक्षरों को अनेकानेक शक्तिधाराओं का एकीकरण कह सकते हैं। ये धाराएँ कितने ही स्तर की हैं—कितनी ही दिशाओं से आई हैं। कितनी ही विशेषताओं से युक्त हैं। उन वर्गों का उल्लेख अवतारों-देवताओं, दिव्यशक्तियों, ऋषियों के रूप में हुआ है। शक्तियों में से कुछ भौतिकी हैं, कुछ आत्मिकी, इनके नामकरण उनकी विशेषताओं के अनुरूप हुए हैं। शास्त्रों में इन भेद-प्रभेद का सुविस्तृत वर्णन है।

चौबीस अवतारों की गणना कई प्रकार से की गई है। पुराणों में उनके जो नाम गिनाए गए हैं, उनमें एकरूपता नहीं है। दस अवतारों के संबंध में प्राय: जिस प्रकार की सहमान्यता है, वैसी २४ अवतारों

के संबंध में नहीं है। किंतु गायत्री के अक्षरों के अनुसार उनकी संख्या सभी स्थलों पर २४ ही है। उनमें से अधिक प्रतिपादनों के आधार पर जिन्हें २४ अवतार ठहराया गया है, वे ये हैं—१. नारायण (विराट्) २. हंस, ३. यज्ञ पुरुष, ४. मत्स्य, ५. कूर्म, ६. वाराह, ७. वामन, ८. नृसिंह, ९. परशुराम, १०. नारद, ११. धन्वन्तरि, १२. सनत्कुमार, १३. दत्तात्रेय, १४. कपिल, १५. ऋषभदेव, १६. हयग्रीव, १७. मोहिनी, १८. हरि, १९. प्रभु, २०. राम, २१. कृष्ण, २२. व्यास, २३. बुद्ध, २४. निष्कलंक-प्रज्ञावतार।

भगवान के सभी अवतार समष्टि संतुलन के लिए हुए हैं। धर्म की स्थापना और अधर्म का निराकरण उनका प्रमुख उद्देश्य रहा है। इन सभी अवतारों की लीलाएँ भिन्न-भिन्न हैं। उनके क्रिया-कलाप, प्रतिपादन, उपदेश, निर्धारण भी पृथक्-पृथक् हैं। किंतु लक्ष्य एक ही है—व्यक्ति की परिस्थिति और समाज की परिस्थिति में उत्कृष्टता का अभिवर्द्धन एवं निकृष्टता का निवारण। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भगवान समय-समय पर अवतरित होते रहे हैं। इन्हीं उद्देश्यों की गायत्री के २४ अक्षरों में सन्निहित प्रेरणाओं के साथ पूरी तरह संगति बैठ जाती है। प्रकारांतर से यह भी कहा जा सकता है कि भगवान के २४ अवतार गायत्री मंत्र में प्रतिपादित २४ तथ्यों, आदर्शों को व्यावहारिक जीवन में उतारने की विधि-व्यवस्था का लोकशिक्षण करने के लिए प्रकट हुए हैं।

कथा है कि दत्तात्रेय की जिज्ञासाओं का जब कहीं समाधान न हो सका तो वे प्रजापति के पास पहुँचे और सद्ज्ञान दे सकने वाले समर्थ गुरु को उपलब्ध करा देने का अनुरोध किया। प्रजापति ने गायत्री मंत्र का संकेत किया। दत्तात्रेय वापस लौटे तो उन्होंने सामान्य प्राणियों और घटनाओं से अध्यात्म तत्त्वज्ञान की शिक्षा-प्रेरणा ग्रहण की। कथा के अनुसार यही २४ संकेत उनके २४ गुरु बन गए। इस

आलंकारिक कथा वर्णन में गायत्री के २४ अक्षर ही दत्तात्रेय के परम समाधान कारक सद्गुरु हैं।

तत्त्वज्ञानियों ने गायत्री मंत्र में अनेकानेक तथ्यों को ढूँढ़ निकाला है और यह समझने-समझाने का प्रयत्न किया है कि गायत्री मंत्र के २४ अक्षर में किन रहस्यों का समावेश है। उनके शोध निष्कर्षों में से कुछ इस प्रकार हैं—

१. ब्रह्म-विज्ञान के २४ महाग्रंथ हैं। ४ वेद, ४ उपवेद, ४ ब्राह्मण, ६ दर्शन, ६ वेदांग। यह सब मिलकर २४ होते हैं। तत्त्वज्ञों का ऐसा मत है कि गायत्री में २४ अक्षरों की व्याख्या के लिए उनका विस्तृत रहस्य समझाने के लिए इन शास्त्रों का निर्माण हुआ है।

२. हृदय को जीव का और ब्रह्मरंध्र को ईश्वर का स्थान माना गया है। हृदय से ब्रह्मरंध्र की दूरी २४ अंगुल है। इस दूरी को पार करने के लिए २४ कदम उठाने पड़ते हैं। २४ सद्गुण अपनाने पड़ते हैं। इन्हीं को २४ योग कहा गया है।

३. विराट् ब्रह्म का शरीर २४ अवयवों वाला है। मनुष्य शरीर के भी प्रधान अंग २४ ही हैं।

४. सूक्ष्मशरीर की शक्ति प्रवाहिकी नाड़ियों में २४ प्रधान हैं। ग्रीवा में ७, पीठ में १२, कमर में ५, इन सबको मेरुदंड के सुषुम्ना परिवार का अंग माना गया है।

५. गायत्री को अष्टसिद्धि और नवनिधि की अधिष्ठात्री माना गया है। इन दोनों के समन्वय से शुभ गतियाँ प्राप्त होती हैं। यह २४ महान लाभ गायत्री परिवार के अंतर्गत आते हैं।

६. सांख्य दर्शन के अनुसार यह सारा सृष्टिक्रम २४ तत्त्वों के सहारे चलता है। उनका प्रतिनिधित्व गायत्री के २४ अक्षर करते हैं।

'योगी याज्ञवल्क्य' नामक ग्रंथ में गायत्री के अक्षरों का विवरण दूसरी तरह लिखा है—

कर्मेंद्रियाणि पंचैव पंचबुद्धीन्द्रियाणि च ।
पंच पंचेंद्रियार्थाश्च भूतानाम् चैव पंचकम्॥
मनोबुद्धिस्तथात्मा च अव्यक्तं च यदुत्तमम्।
चतुर्विंशत्यथैतानि गायत्र्या अक्षराणि तु॥
प्रणवं पुरुषं विद्धि सर्व्वगं पंचविंशकम्॥

१. पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, २. पाँच कर्मेंद्रियाँ, ३. पाँच तत्त्व, ४. पाँच तन्मात्राएँ। (शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श) ये बीस हुए। इनके अतिरिक्त अंत:करण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) ये चौबीस हो गए। परमात्म पुरुष इन सबसे ऊपर पच्चीसवाँ है।

ऐसे-ऐसे अनेक कारण और आधार हैं जिनसे गायत्री में २४ ही अक्षर क्यों हैं, इसका समाधान मिलता है। विश्व की महान विशिष्टताओं के कितने ही परिकर ऐसे हैं जिनका जोड़ २४ बैठ जाता है। गायत्री मंत्र में उन परिकरों का प्रतिनिधित्व रहने की बात, इस महामंत्र में २४ की ही संख्या होने से, समाधान करने वाली प्रतीत हो सकती है।

'महाभारत' का विशुद्ध स्वरूप प्राचीनकाल में 'भारत-संहिता' के नाम से प्रख्यात था। उसमें २४००० श्लोक थे—"**चतुर्विंशति सहस्रं चक्रे भारतम्**" में उसी का उल्लेख है। इस प्रकार महत्त्वपूर्ण ग्रंथ रचयिताओं ने किसी-न-किसी रूप में अपनी श्रद्धा व्यक्त की है।

वाल्मीकि रामायण में हर एक हजार श्लोकों के बाद गायत्री के एक अक्षर का संपुट है। श्रीमद्भागवत के बारे में भी यही बात है।

ऋषि, छंद और देवतापरक गायत्री विनियोग

गायत्री के समग्र विनियोग में सविता देवता, विश्वामित्र ऋषि एवं गायत्री छंद का उल्लेख किया गया है, परंतु उसके वर्गीकरण में प्रत्येक अक्षर एक स्वतंत्र शक्ति बन जाता है। हर अक्षर अपने आप में एक मंत्र है। ऐसी दशा में २४ देवता, २४ ऋषि एवं २४ छंदों का

उल्लेख होना भी आवश्यक है। तत्त्वदर्शियों ने वैसा किया भी है। गायत्री विज्ञान की गहराई में उतरने पर इन विभेदों का स्पष्टीकरण होता है। नारंगी ऊपर से एक दीखती है, पर छिलका उतारने पर उसके खंड घटक स्वतंत्र इकाइयों के रूप में भी दृष्टिगोचर होते हैं। गायत्री को नारंगी की उपमा दी जाए तो उसके अंतराल में चौबीस अक्षरों के रूप में २४ खंड घटकों के दर्शन होते हैं। जो विनियोग एक समग्र गायत्री मंत्र का है, वैसा ही प्रत्येक अक्षर का भी आवश्यक होता है। चौबीस अक्षरों के लिए चौबीस विनियोग बनने पर उनके २४ देवता, २४ ऋषि एवं २४ छंद भी बन जाते हैं।

ऋषि गुण हैं, देवता प्रभाव, छंद को विधाता कह सकते हैं। मोटे रूप में पद्यों की सरंचना को छंद कहते हैं। पिंगलशास्त्र के अनुसार यह संरचना जिस विधि-व्यवस्था में गुँथी गई होती है, उसी आधार पर उसका नामकरण कर दिया जाता है। यह शब्दशास्त्र की साहित्यिक विवेचना हुई। इसी प्रकार मोटे रूप से ऋषियों को व्यक्ति विशेष माना गया है। इनकी ऐतिहासिक चरित्र चर्चा कथा-पुराणों में स्थान-स्थान पर विस्तारपूर्वक लिखी मिलती है। देवताओं को स्वर्गलोक के निवासी दिव्य शरीरधारी माना जाता है और समझा जाता है कि अर्चना, आवाहन करने पर वे कृपापूर्वक उपासकों के समीप पधारते हैं और उनकी प्रार्थना, कामना को पूरा करने में सहायता करते हैं। यह सामान्य स्तर की बालबोध जानकारी है।

गंभीर अवगाहन में गहरे उतरने पर विनियोग का गहरा अर्थ उभरता है। ऋषि सद्‌गुणों के प्रतीक हैं और देवता उनकी अवधारणा के प्रतिफल। स्पष्ट है कि सद्‌गुण ही मनुष्य के व्यक्तित्व को महान बनाते हैं और उन्हीं के आधार पर उत्कृष्ट चिंतन और आदर्श कर्तृत्व बन पड़ता है। आंतरिक आत्मिक स्तर और बहिरंग पुरुषार्थ

का समन्वय अनेकानेक सिद्धियों और विभूतियों के रूप में प्रतिक्रिया स्वरूप सामने आता है। ऋषि आस्थावान पुरुषार्थ को कहते हैं। प्रकारांतर से इसी को गुण-कर्म-स्वभाव की उत्कृष्टता कह सकते हैं। पवित्र और प्रखर व्यक्तित्व ऋषि हैं। ऋषियों की संख्या अगणित है। गायत्री साधना से सभी का सीधा संबंध रहा है, किंतु २४ ऋषि गायत्री विद्या के शोधस्तर के विशेषज्ञ माने गए हैं। ऐतिहासिक विवेचना की दृष्टि से यों कहा जा सकता है कि विश्वामित्र की ही तरह अपने-अपने समय में अपने-अपने प्रयोजन के लिए इन चौबीसों ऋषियों ने गायत्री साधना की थी और सिद्धावस्था प्राप्त की थी। तत्त्वदर्शन की दृष्टि से ऋषि का मानवी अस्तित्व अस्वीकार न करते हुए भी उन्हें सद्गुणों का प्रतीक माना गया है।

ऋषियों और देवताओं का परस्पर समन्वय है। ऋषियों की साधना से विष्णु की तरह सुप्तावस्था में पड़ी रहने वाली देवसत्ता को जाग्रत् होने का अवसर मिलता है। देवताओं के अनुग्रह से साधकों-ऋषियों को उच्चस्तरीय वरदान मिलते हैं। वे सामर्थ्यवान बनते हैं और स्व-पर कल्याण की महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करते हैं।

ऋषि सद्गुण हैं और देवता उनके प्रतिफल। ऋषि को जड़ और देवता को वृक्ष कहा जा सकता है। ऋषित्व और देवत्व के संयुक्त प्रभाव का परिणाम फल-संपदा के रूप में सामने आता है। ऋषि लाखों हुए हैं और देवता तो करोड़ों तक बताए जाते हैं। ऋषि पृथ्वी पर और देवता स्वर्ग में रहने वाले माने जाते हैं।

स्थूल दृष्टि से दोनों के बीच ऐसा कोई तारतम्य नहीं है जिससे उनकी संख्या समान ही रहे। उस असमंजस का निराकरण गायत्री के २४ अक्षरों से संबद्ध ऋषि एवं देवताओं से होता है। हर सद्गुण का विशिष्ट परिणाम होना समझ में आने योग्य बात है। यों प्रत्येक

सद्गुण परिस्थिति के अनुसार अनेकानेक सत्परिणाम प्रस्तुत कर सकता है, फिर भी यह मानकर ही चलना होगा कि प्रत्येक सत्प्रवृत्ति की अपनी विशिष्ट स्थिति होती है और उसी के अनुरूप अतिरिक्त प्रतिक्रिया भी होती है। ऋषि रूपी पुरुषार्थ से देवता रूपी वरदान संयुक्त रूप से जुड़ा रहने की बात हर दृष्टि से समझी जाने योग्य है।

मूर्द्धन्य ऋषियों की गणना २४ है। इसका उल्लेख गायत्री तंत्र में इस प्रकार मिलता है।

वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठः शुक्रः कण्वः पराशरः।
विश्वामित्रो महातेजाः कपिलः शौनको महान्॥
याज्ञवल्क्यो भरद्वाजो जमदग्निस्तपो निधिः ।
गौतमो मुद्गलश्चैव वेदव्यासश्च लोमशः ॥
अगस्त्यः कौशिको वत्सः पुलस्त्यो माण्डुकस्तथा।
दुर्वासास्तपसां श्रेष्ठो नारदः कश्यपस्तथा॥
इत्येते ऋषयः प्रोक्ता वर्णानां क्रमशो मुने।

—देवी भागवत/१२.१.१३-१६

गायत्री के २४ अक्षरों के द्रष्टा २४ ऋषि यह हैं—१. वामदेव, २. अत्रि, ३. वशिष्ठ, ४. शुक्र, ५. कण्व, ६. पाराशर, ७. विश्वामित्र, ८. कपिल, ९. शौनक, १०. याज्ञवल्क्य, ११. भरद्वाज, १२. जमदग्नि, १३. गौतम, १४. मुद्गल, १५. वेदव्यास, १६. लोमश, १७. अगस्त्य, १८. कौशिक, १९. वत्स, २०. पुलस्त्य, २१. मांडूक, २२. दुर्वासा, २३. नारद, २४. कश्यप।

इन २४ ऋषियों को सामान्य जनजीवन में जिन सत्प्रवृत्तियों के रूप में जाना जा सकता है, वे ये हैं—

१. प्रज्ञा, २. सृजन, ३. व्यवस्था, ४. नियंत्रण, ५. सद्ज्ञान, ६. उदारता, ७. आत्मीयता, ८. आस्तिकता, ९. श्रद्धा, १०. शुचिता, ११. संतोष, १२. सहृदयता, १३. सत्य, १४. पराक्रम, १५. सरसता,

१६. स्वावलंबन, १७. साहस, १८. ऐक्य, १९. संयम, २०. सहकारिता, २१. श्रमशीलता, २२. सादगी, २३. शील, २४. समन्वय। प्रत्यक्ष ऋषि यही हैं।

इन ऋषियों की कार्य पद्धति छंद है। मोटे रूप से इसे उनकी उपासना में प्रयुक्त होने वाले मंत्रों की उच्चार विधि-स्वर संहिता कह सकते हैं। सामवेद में मंत्र विद्या के महत्त्वपूर्ण आधार उच्चारण-विधान, स्वर संकेतों का विस्तारपूर्वक विधान-निर्धारण मिलता है। प्रत्येक वेद मंत्र के साथ उदात्त-अनुदात्त स्वरित के स्वर संकेत लिखे मिलते हैं। यह जप एवं पाठ-प्रक्रिया का सामान्य विधान हुआ, पर यह वर्णन भी बालबोध जैसा ही है। वस्तुतः छंद उस साधना प्रक्रिया को कहते हैं, जिसमें प्रगति के लिए समग्र विधि-विधानों का समावेश हो।

साधना की विधियाँ वैदिकी भी हैं और तांत्रिकी भी। व्यक्ति विशेष की स्थिति के अनुरूप उनके क्रम-उपक्रम में अंतर भी पड़ता है। किस स्तर का व्यक्ति, किस प्रयोजन के लिए, किस स्थिति में, क्या साधना करे, इसका एक स्वतंत्र शास्त्र है। इसका स्पष्ट निर्देश ग्रंथ रूप में करा सकना कठिन है। इस प्रक्रिया का निर्धारण अनुभवी मार्गदर्शक की सूक्ष्म दृष्टि पर निर्भर है। रोगों के निदान और उनके उपचार का वर्णन चिकित्सा ग्रंथों में विस्तारपूर्वक मिल जाता है। इतने पर भी अनुभवी चिकित्सक द्वारा रोगी की विशेष स्थिति को देखते हुए उपचार का विशिष्ट निर्धारण करने की आवश्यकता बनी ही रहती है। यह चिकित्सक की स्वतंत्र सूझ-बूझ पर ही निर्भर है। इसके लिए कोई लक्ष्मण रेखा खिंच नहीं सकती, जिसके अनुसार चिकित्सक पर यह प्रतिबंध लगे कि अमुक स्थिति के रोगी का उपचार अमुक प्रकार करने के लिए ही प्रतिबंधित है।

चिकित्सक की सूझ-बूझ को मौलिक कहा जा सकता है। ठीक इसी प्रकार छंद को अनुभवी मार्गदर्शक द्वारा किया गया इंगित कहा जा सकता है। साधना विधियों में एक ही प्रक्रिया का वर्णन अनेक प्रकार से हुआ है। उसमें से किस परिस्थिति में क्या उपयोग हो सकता है, इसकी बहुमुखी निर्धारण प्रज्ञा को 'छंद' कह सकते हैं।

समस्त गायत्री-साधना का स्वतंत्र विधान है। यों स्थिति के अनुरूप उस विधान के भी भेद और उपभेद हैं, किंतु २४ अक्षरों में सन्निहित किसी शक्ति विशेष की साधना करनी हो तो व्यक्ति के स्तर तथा प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए जो निर्धारण करना पड़े, उसका संकेत 'छंद' रूप में किया गया है। अच्छा तो यह होता कि पिंगलशास्त्र में जिस प्रकार छंदों के स्वरूप का स्पष्ट निर्धारण किया गया है, उसी प्रकार साधना की छंद प्रक्रिया का भी शास्त्र बना होता, भले ही उसका विस्तार कितना ही बड़ा क्यों न करना पड़ता। यदि ऐसा हो सका होता तो सरलता रहती। किंतु इतने पर भी स्वतंत्र निर्धारण की आवश्यकता से छुटकारा नहीं ही मिलता।

जो भी हो, आज स्थिति यह है कि छंद रूप में यह संकेत मौजूद है कि उपचार की दिशा धारा क्या होनी चाहिए? यह सांकेतिक भाषा है। पारंगतों के लिए इस अंगुलि निर्देश से भी काम चल सकता है और प्राचीनकाल में चलता ही रहा है। पर आज की आवश्यकता यह है कि 'गुरुपरंपरा' तक सीमित रहने वाली रहस्यमयी विधि-व्यवस्था को अब सर्वसुलभ बनाया जाए। प्राचीनकाल में ऐसे प्रयोजन गोपनीय रखे जाते थे। आज भी अणु-विस्फोट जैसे प्रयोगों की विधियाँ गोपनीय ही रखी जा रही हैं। राजनैतिक रहस्यों के संबंध में भी अधिकारियों की गोपनीयता की शपथ लेनी पड़ती है, पर एक सीमा तक ही यह उचित है। 'छंद' के संबंध में भी एक

सीमा तक गोपनीयता बरती जा सकती है, फिर भी उसका उतना विस्तार तो होना ही चाहिए कि उसके लुप्त होने का खतरा न रहे।

गायत्री मंत्र के हर अक्षर का एक स्वतंत्र छंद, स्वतंत्र साधना विधान है, जिसका संकेत-उल्लेख 'गायत्री तंत्र' में इस प्रकार मिलता है—

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च।
त्रिष्टुभं जगती चैव तथाऽतिजगती मता॥
शक्वर्यतिशक्वरी च धृतिश्चाति धृतिस्तथा।
विराट्प्रस्तारपंक्तिश्च कृतिः प्रकृतिराकृतिः॥
विकृतिः संकृतिश्चैवाक्षरपंक्तिस्तथैव च।
भूर्भुवः स्वरितिच्छंदस्तथा ज्योतिष्मती स्मृतम्॥
इत्येतानि च छंदांसि कीर्तितानि महामुने।

देवी भागवत १२.१.१६-१९

हे नारद! गायत्री के २४ अक्षरों में २४ छंद सन्निहित हैं— १. गायत्री, २. उष्णिक्, ३. अनुष्टुप्, ४. बृहती, ५. पंक्ति, ६. त्रिष्टुप्, ७. जगती, ८. अतिजगती, ९. शक्वरी, १०. अतिशक्वरी, ११. धृति, १२. अतिधृति, १३. विराट्, १४. प्रस्तार पंक्ति, १५. कृति, १६. प्रकृति, १७. आकृति, १८. विकृति, १९. संकृति, २०. अक्षर पंक्ति, २१. भूः, २२. भुवः, २३. स्वः, २४. ज्योतिष्मती।

छंद विद्या के अंतर्गत साधना-विधान का जो उल्लेख मिलता है, उसे मुद्रा कहा जाता है। मुद्राओं में यों कई ग्रंथों में मात्र अंगुलि संचालन की सामान्य क्रियाओं को ही पर्याप्त मान लिया गया है और गायत्री उपासकों को उन्हें ही कर लेने पर काम चल सकने का आश्वासन दिया गया है, पर यह आरंभ है। वास्तव में मुद्रा-विज्ञान अपने आप में एक समग्र शक्ति है। उसमें उँगलियों का ही नहीं, शरीर के विभिन्न अवयवों का, श्वसन संस्थान का तथा मन के

विशिष्ट भाव-प्रवाहों का समावेश होता है। २४ मुद्रा साधनाओं को गायत्री के २४ अक्षरों के लिए किस प्रकार उपयोग किया जाना चाहिए इसका निर्धारण अनुभवी मार्गदर्शक के परामर्श से ही हो सकता है। मुद्राओं का उल्लेख 'घेरंडसंहिता' में इस प्रकार है—

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलंधरम्।
मूलबंधं महाबंधं महावेधश्च खेचरी॥
विपरीतकारिणी योनिर्वज्रोली शक्तिचालिनी।
ताडागीमाण्डवीमुद्रा शाम्भवी पंचधारणा॥
अश्विनी पाशिनी काकी मातंगी च भुजंगिनी।
चतुर्विंशति मुद्राणि सिद्धिदानीह योगिनाम्॥

—घेरंड संहिता तृतीयोपदेश १-३

१. महामुद्रा, २. नभोमुद्रा, ३. उड्डीयन, ४. जालंधर बंध, ५. मूलबंध, ६. महाबंध, ७. खेचरी, ८. विपरीतकरणी, ९. योनिमुद्रा, १०. बज्रोली, ११. शक्ति चालनी, १२. तड़ागी, १३. मांडवी, १४. शांभवी, १५. अश्विनी, १६. पाशिनी, १७. काकी, १८. मातंगी, १९. भुजंगिनी, २०. पार्थिवी, २१. आपंभरी, २२. वैश्वानरी, २३. वायवी, २४. आकाशी। यह चौबीस मुद्रा साधनाएँ योग साधकों को सिद्धियाँ प्रदान करने वाली हैं।

तंत्र प्रकरण में दोनों हाथों की उँगलियों को मिलाकर कुछ विशेष प्रकार की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। इन्हें मुद्राएँ कहते हैं। मुद्राओं की संख्या २४ है। प्रत्येक अक्षर की एक मुद्रा है। अक्षरों के क्रम से मुद्रा निर्धारण निम्न प्रकार किया गया है। इन्हें किसी अभ्यासी विज्ञजन से अथवा उपासना ग्रंथों में उपलब्ध चित्रों के माध्यम से जाना जा सकता है।

अतः परं प्रवक्ष्यामि वर्णमुद्राः क्रमेण तु।
सुमुखं सम्पुटं चैव विततं विस्तृतं तथा॥

द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुःपंचमुखं तथा।
षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकांजलिकं तथा॥
शकटं यमपाशं च ग्रथितं सन्मुखोन्मुखम्।
प्रलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम्॥
सिंहाक्रान्तं, महाक्रान्तं, मुद्गरं पल्लवं तथा।

—देवीभागवत १२.२.१३-१६

अर्थात—गायत्री के अनुसार २४ मुद्राएँ इस प्रकार हैं—१. सुमुख, २. संपुट, ३. वितत, ४. विस्तृत, ५. द्विमुख, ६. त्रिमुख, ७. चतुर्मुख, ८. पंचमुख, ९. षड्मुख, १०. अधोमुख, ११. व्यापकांजलि, १२. शकट, १३. यम पाश, १४. ग्रंथित, १५. सन्मुखोन्मुख, १६. प्रलंब, १७. मुष्टिक, १८. मत्स्य, १९. कूर्म, २०. वराहक, २१. सिंहाक्रांत, २२. महाक्रांत, २३. मुद्गर, २४. पल्लव।

गायत्री विनियोग में सविता देवता का उल्लेख है। २४ अक्षरों के २४ देवताओं की नामावली अन्यत्र दी गई है। उन देवताओं को अष्टसिद्धि, नवनिधि एवं सप्त विभूतियों के रूप में गिना गया है। ८+९+७=का योग २४ होता है। गायत्री से प्राचीनकाल के साधकों को उन चमत्कारी विशिष्टताओं की उपलब्धि होती होगी। आज के सामान्य साधक सामान्य व्यक्तित्व के रहते हुए जो सफलताएँ प्राप्त कर सकते हैं, उन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है—

१. प्रज्ञा, २. वैभव, ३. सहयोग, ४. प्रतिभा, ५. ओजस्, ६. तेजस्, ७. वर्चस्, ८. कांति, ९. साहसिकता, १०. दिव्य दृष्टि, ११. पूर्वाभास, १२. विचार संचार, १३. वरदान, १४. शाप, १५. शांति, १६. प्राण प्रयोग, १७. देहांतर संपर्क, १८. प्राणाकर्षण, १९. ऐश्वर्य, २०. दूर श्रवण, २१. दूरदर्शन, २२. लोकांतर संपर्क, २३. देव संपर्क, २४. कीर्ति। इन्हीं को गायत्री की २४ सिद्धियाँ कहा जाता है।

गायत्री उपासक पर देव अनुग्रह की निरंतर वर्षा होती है। उसमें ऋषि-तत्त्व बढ़ता है। छंद-पुरुषार्थ में साधना प्रयोजन में श्रद्धा रहती है। मन लगता है। फलतः उसकी भाव भरी अंतरात्मा का चुंबकत्व उन देवताओं का अजस्त्र वरदान प्राप्त करता है, जिनका इस महामंत्र के साथ सघन संबंध है। कहा भी है—

चतुर्विंशतितत्त्व सा यदा भवति शोभना।
गायत्रीं सवितुः शंभोर्गायत्रीं मदनात्मिकाम्॥
गायत्रीं विष्णुगायत्रीं गायत्रीं त्रिपदात्मनः।
गायत्रीं दक्षिणामुर्त्तेर्गायत्रीं शंभुयोषितः॥

गायत्री के चौबीस अक्षर, चौबीस तत्त्व हैं। गायत्री ही सविता, शिव, विष्णु, त्रिपदा, दक्षिणामूर्ति, शंभु, शक्ति और काम बीज हैं।

सृष्टि की पदार्थ संपदा का वर्गीकरण करने की दृष्टि से जिन पंचतत्त्वों की चर्चा की जाती है, उसे भौतिक जगत् की सृजन सामग्री कहा जाता है। उस सामान्य वर्गीकरण का विज्ञानवेत्ताओं ने अधिक गंभीर विश्लेषण किया है तो उनकी संख्या १०० से भी अधिक हो गई है। यह भौतिक जगत् की तत्त्व चर्चा हुई। आत्मिक क्षेत्र में चेतना ही सर्वस्व है। इस चेतना के जिन-जिन माध्यमों से अपने अस्तित्व का परिचय देने की संभावनाएँ ग्रहण करने तथा अभीष्ट प्रयोजन संपन्न करने में आवश्यकता पड़ती है, उन्हें तत्त्व कहा गया है। ऐसे चेतन-तत्त्व २४ हैं। इसी गणना में भौतिक पंचतत्त्वों की भी गणना की जाती है।

सांख्य दर्शन में जिन २४ तत्त्वों का उल्लेख है, वे पदार्थपरक नहीं, वरन् चेतना को प्रभावित करने वाली तथा चेतना से प्रभावित होने वाली सृष्टि धाराएँ हैं। ऐसी धाराओं की गणना २४ की संख्या में की गई है। इन्हें प्रकारांतर से गायत्री महाशक्ति की सृष्टि-संचालन एवं जीवन-प्रवाह में महत्त्वपूर्ण भूमिका संपन्न करने

वाली दिव्य-धाराएँ, देव संपदाएँ, सृष्टि-प्रेरणाएँ कहा जा सकता है। प्रवाह परिकर को गायत्री महाशक्ति की सशक्त स्फुरणाएँ समझा जा सकता है। गायत्री तत्त्वदर्शन की विवेचना इसी रूप में होती रही है।

गायत्री महाशक्ति के २४ अक्षरों के साथ जुड़े हुए २४ तत्त्व इस प्रकार हैं—

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च।
गंधो रसश्च रूपं च शब्दः स्पर्शस्तथैव च॥
उपस्थं पायुपादं च पाणी वागपि च क्रमात्।
घ्राणम् जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्श्रोत्रं च ततः परम्॥
प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानश्च ततः परम्।
तत्त्वान्येतानि वर्णानां क्रमशः कीर्तितानि तु॥

—गायत्री तंत्र द्वितीय पटल

१. पृथ्वी, २. जल, ३. अग्नि, ४. वायु, ५. आकाश, ६. गंध, ७. रस, ८. रूप, ९. शब्द, १०. स्पर्श, ११. उपस्थ, १२. वायु, १३. पाद, १४. पाणि, १५. वाणी, १६. घ्राण, १७. जिह्वा, १८. चक्षु, १९. त्वचा, २०. श्रोत्र, २१. प्राण, २२. अपान, २३. व्यान, २४. समान।

इसके अतिरिक्त २४ तत्त्वों का एक अन्य प्रतिपादन इस प्रकार मिलता है—

१. पृथ्वी, २. जल, ३. तेज, ४. वायु, ५. आकाश, ६. गंध, ७. रस, ८. रूप, ९. स्पर्श, १०. शब्द, ११. वाक्, १२. पैर, १३. गुदा, १४. जननेंद्रिय, १५. त्वचा, १६. नेत्र, १७. कान, १८. जीभ, १९. नाक, २०. मन, २१. बुद्धि, २२. अहंकार, २३. चित्त, २४. ज्ञान।

सच्ची गायत्री उपासना का माहात्म्य और प्रतिफल शास्त्रकारों ने जिस प्रकार बताया है, उसे देखते हुए यही प्रतीत होता है कि सर्वतो

प्राण-प्रगति के पथ पर बढ़ने के लिए गायत्री विद्या का महत्त्व असाधारण है। कहा गया है—

परब्रह्म स्वरूपा च निर्वाण पददायिनी।
ब्रह्मतेजोमयीशक्तिस्तदधिष्ठातृ देवता॥

अर्थात—गायत्री परब्रह्म स्वरूप तथा निर्वाण पद देने वाली है। वह ब्रह्मतेज-शक्ति की अधिष्ठात्री देवी है।

चौबीस देव गायत्री

गायत्री परिकर सुविस्तृत हैं। उसके अंतर्गत अवतार, देवता, देवियाँ, ऋषि आदि का समावेश है। अनेकों शक्तियों की गरिमा और साधनाओं की महिमा का वर्णन है। संक्षेप में इस छोटे-से २४ अक्षर वाले ब्रह्म सूत्र में वह सब कुछ है जो मनुष्य की भौतिक प्रगति एवं आत्मिक समृद्धि के लिए आवश्यक है।

गायत्री में अपनी निजी २४ सामर्थ्यें हैं, जिनके अंतर्गत समृद्धियों और विभूतियों का सारा परिकर भलीभाँति समा जाता है। प्रतिपादन कर्ताओं ने देवताओं के स्वतंत्र अस्तित्व को भी मान्यता दी है और उनकी आराधना के विधि-विधान बनाए हैं। इस वर्ग के लिए भी गायत्री के माध्यम से अन्य देवताओं की उपासना की जा सकती है। जिनके उपास्य इष्ट देवता हैं, वे उनके निमित्त बनाई गई देव-गायत्री के माध्यम से अपने लक्ष्य तक अधिक सरलतापूर्वक पहुँच सकते हैं।

तंत्र ग्रंथों २४ देव गायत्री भी बताई गई हैं। आवश्यकतानुसार अनुभवी मार्गदर्शन में ही इनकी उपासना भी की जा सकती है। देवताओं का विवरण एवं प्रतिफल शास्त्रों में इस प्रकार लिखा मिलता है।

गायत्री मंत्र के २४ अक्षरों में से प्रत्येक के देवता क्रमशः १. गणेश, २. नृसिंह, ३. विष्णु, ४. शिव, ५. कृष्ण, ६. राधा,

७. लक्ष्मी, ८. अग्नि, ९. इंद्र, १०. सरस्वती, ११. दुर्गा, १२. हनुमान, १३. पृथ्वी, १४. सूर्य, १५. राम, १६. सीता, १७. चंद्रमा, १८. यम, १९. ब्रह्म, २०. वरुण, २१. नारायण, २२. हयग्रीव, २३. हंस, २४. तुलसी हैं।

उन शक्तियों के द्वारा क्या-क्या लाभ मिल सकते हैं, इसका विवरण नीचे दिया गया है—

१. गणेश—सफलता शक्ति। फल—कठिन कामों में सफलता, विघ्नों का नाश, बुद्धि-वृद्धि।

२. नृसिंह—पराक्रम शक्ति। फल—पुरुषार्थ, पराक्रम, वीरता, शत्रु नाश, आतंक, आक्रमण से रक्षा।

३. विष्णु—पालन शक्ति। फल—प्राणियों का पालन, आश्रितों की रक्षा, योग्यताओं की वृद्धि, रक्षा।

४. शिव—कल्याण शक्ति। फल—अनिष्ट का विनाश, कल्याण की वृद्धि, निश्चयता, आत्मपरायणता।

५. कृष्ण—योग शक्ति। फल—क्रियाशीलता, आत्मनिष्ठा, अनासक्ति, कर्मयोग, सौंदर्य, सरसता।

६. राधा—प्रेम शक्ति। फल—प्रेम दृष्टि, द्वेष भाव की समाप्ति।

७. लक्ष्मी—धन शक्ति। फल—धन, पद, यश और भोग्य पदार्थों की प्राप्ति।

८. अग्नि—तेज शक्ति। फल—उष्णता, प्रकाश, शक्ति और सामर्थ्य की वृद्धि, प्रभावशाली, प्रतिभाशाली, तेजस्वी होना।

९. इंद्र—रक्षाशक्ति। फल—रोग, हिंसक चोर, शत्रु, भूत-प्रेत, अनिष्ट आदि के आक्रमणों से रक्षा।

१०. सरस्वती—बुद्धि शक्ति। फल—मेधा की वृद्धि, बुद्धि की पवित्रता, चतुरता, दूरदर्शिता, विवेकशीलता।

११. दुर्गा—दमन शक्ति। फल—विघ्नों पर विजय, दुष्टों का दमन, शत्रुओं का संहार, दर्प की प्रचंडता।

१२. हनुमान—निष्ठा शक्ति। फल—कर्तव्यपरायणता, निष्ठावान, विश्वासी, ब्रह्मचारी एवं निर्भय होना।

१३. पृथ्वी—धारण शक्ति। फल—गंभीरता, क्षमाशीलता, सहिष्णुता, दृढ़ता, धैर्य, भार-वहन करने की क्षमता।

१४. सूर्य—प्राण शक्ति। फल—नीरोगिता, दीर्घजीवन, विकास, वृद्धि, उष्णता, विकारों का शोधन।

१५. राम—मर्यादा शक्ति। फल—तितिक्षा, कष्ट में विचलित न होना, धर्म, मर्यादा, सौम्यता, संयम, मैत्री।

१६. सीता—तपशक्ति। फल—निर्विकार, पवित्रता, मधुरता, सात्त्विकता, शील, नम्रता।

१७. चंद्र—शांति शक्ति। फल—उद्विग्नताओं की शांति, शोक, क्रोध, चिंता, प्रतिहिंसा आदि विक्षोभों का शमन, काम, लोभ, मोह एवं तृष्णा का निवारण, निराशा के स्थान पर आशा का संचार।

१८. यम—काल शक्ति। फल—समय का सदुपयोग, मृत्यु से निर्भयता, निरालस्यता, स्फूर्ति, जागरूकता।

१९. ब्रह्मा—उत्पादक शक्ति। फल—उत्पादन शक्ति की वृद्धि। वस्तुओं का उत्पादन बढ़ना, संतान बढ़ना, पशु, कृषि, वृष, वनस्पति आदि में उत्पादन की मात्रा बढ़ना।

२०. वरुण—रसशक्ति। फल—भावुकता, सरलता, कलाप्रियता, कवित्व, आर्द्रता, दया, दूसरों के लिए द्रवित होना, कोमलता, प्रसन्नता, माधुर्य।

२१. नारायण—आदर्श शक्ति। फल—महत्त्वाकांक्षा, श्रेष्ठता, उच्च आकांक्षा, दिव्य गुण, स्वभाव, उज्ज्वल चरित्र, पथ-प्रदर्शन, कार्य शैली।

२२. हयग्रीव—साहस शक्ति। फल—उत्साह, साहस, वीरता, शूरता, निर्भयता, कठिनाइयों से लड़ने की अभिलाषा, पुरुषार्थ।

२३. हंस—विवेक शक्ति। फल—उज्ज्वल कीर्ति, आत्मसंतोष, सत्-असत् निर्णय, दूरदर्शिता, सत्संगति, उत्तम आहार-विहार।

२४. तुलसी—सेवा शक्ति। फल—लोकसेवा में प्रवृत्ति, सत्य प्रधानता, पतिव्रत, पत्नीव्रत, आत्मशांति, पर-दुःख निवारण।

जिसे अपने में जिस शक्ति की, जिस गुण-कर्म-स्वभाव की कमी या विकृति दिखाई पड़ती हो, उसे उस शक्ति वाले देवता की उपासना विशेष रूप से करनी चाहिए। जिस देवता की जो गायत्री है, उसका दशांश जप गायत्री साधना के साथ-साथ करना चाहिए। जैसे कोई व्यक्ति संतानहीन है, संतान की कामना करनी चाहिए। यदि गायत्री की दस मालाएँ नित्य जपी जाएँ तो एक माला ब्रह्म गायत्री की भी जपनी चाहिए। केवल मात्र ब्रह्म गायत्री को ही जपने से काम न चलेगा, क्योंकि ब्रह्म-गायत्री की स्वतंत्र सत्ता उतनी बलवती नहीं है। देव-गायत्रियाँ, उस महान वेदात्मा गायत्री की छोटी शाखाएँ तभी तक हरी-भरी रहती हैं, जब तक वे मूल वृक्ष के साथ जुड़ी हुई हैं। वृक्ष से अलग कट जाने पर शाखा निष्प्राण हो जाती है, उसी प्रकार अकेली देवी-गायत्री भी निष्प्राण होती है, उनका जप महागायत्री के साथ ही करना चाहिए।

नीचे चौबीस देवताओं की गायत्रियाँ दी जाती हैं, इनके जप से उन देवताओं के साथ विशेष रूप से संबंध रखने वाले गुण, पदार्थ एवं अवसर साधक प्राप्त कर सकते हैं।

१. गणेश गायत्री— ॐ एक दंष्ट्राय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो बुद्धिः प्रचोदयात्।

२. नृसिंह गायत्री— ॐ उग्रनृसिंहाय विद्महे, वज्र नखाय धीमहि। तन्नो नृसिंहः प्रचोदयात्।

३. विष्णु गायत्री— ॐ नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।

४. शिव गायत्री— ॐ पञ्चवक्त्राय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

५.कृष्ण गायत्री— ॐ देवकीनंदनाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि। तन्नो कृष्णः प्रचोदयात् ।

६. राधा गायत्री— ॐ वृषभानुजायै विद्महे, कृष्णप्रियायै धीमहि। तन्नो राधा प्रचोदयात्।

७. लक्ष्मी गायत्री— ॐ महालक्ष्म्यै विद्महे, विष्णुप्रियायै धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्।

८. अग्नि गायत्री— ॐ महाज्वालाय विद्महे, अग्निदेवाय धीमहि। तन्नो अग्निः प्रचोदयात्।

९. इंद्र गायत्री— ॐ सहस्रनेत्राय विद्महे, वज्रहस्ताय धीमहि। तन्नो इंद्रः प्रचोदयात्।

१०.सरस्वती गायत्री— ॐ सरस्वत्यै विद्महे, ब्रह्मपुत्र्यै धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्।

११. दुर्गा गायत्री— ॐ गिरिजायै विद्महे, शिवप्रियायै धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्।

१२. हनुमान गायत्री— ॐ अञ्जनीसुताय विद्महे, वायुपुत्राय धीमहि। तन्नो मारुतिः प्रचोदयात्।

१३. पृथ्वी गायत्री— ॐ पृथ्वीदेव्यै विद्महे, सहस्रमूर्त्यै धीमहि। तन्नो पृथ्वी प्रचोदयात्।

१४. सूर्य गायत्री— ॐ भास्कराय विद्महे, दिवाकराय धीमहि। तन्नो सूर्य्यः प्रचोदयात्।

१५. राम गायत्री— ॐ दाशरथये विद्महे, सीतावल्लभाय धीमहि। तन्नो रामः प्रचोदयात्।

१६. सीता गायत्री— ॐ जनकनंदिन्यै विद्महे, भूमिजायै धीमहि। तन्नो सीता प्रचोदयात्।

१७. चंद्र गायत्री— ॐ क्षीरपुत्राय विद्महे, अमृततत्त्वाय धीमहि। तन्नो चंद्रः प्रचोदयात्।

१८. यम गायत्री— ॐ सूर्यपुत्राय विद्महे, महाकालाय धीमहि। तन्नो यमः प्रचोदयात्।

१९. ब्रह्मा गायत्री— ॐ चतुर्मुखाय विद्महे, हंसारूढाय धीमहि। तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात्।

२०. वरुण गायत्री— ॐ जलबिम्बाय विद्महे, नीलपुरुषाय धीमहि। तन्नो वरुणः प्रचोदयात्।

२१. नारायण गायत्री— ॐ नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि। तन्नो नारायणः प्रचोदयात्।

२२. हयग्रीव गायत्री— ॐ वाणीश्वराय विद्महे, हयग्रीवाय धीमहि। तन्नो हयग्रीवः प्रचोदयात्।

२३. हंस गायत्री— ॐ परमहंसाय विद्महे, महाहंसाय धीमहि। तन्नो हंसः प्रचोदयात्।

२४. तुलसी गायत्री— ॐ तुलस्यै विद्महे, विष्णुप्रियायै धीमहि। तन्नो वृंदा प्रचोदयात्।

एक ही परमात्मा की विविध शक्तियों का नाम ही देवता है। जैसे सूर्य की विविध गुणों वाली किरणें अल्ट्रा वायलेट, अल्फा, पारदर्शी मृत्यु किरण आदि अनेक नामों से पुकारी जाती हैं, उसी

प्रकार अनेक कार्य और गुणों के कारण ईश्वरीय शक्तियाँ भी देव नामों से पुकारी जाती हैं। सूर्य की प्रातःकालीन, मध्याह्न कालीन, संध्याकालीन किरणों के गुण में अंतर पड़ जाता है। सूर्य एक ही है, पर प्रदेश, ऋतु और काल के भेद से उनका गुण भिन्न-भिन्न हो जाता है। ईश्वरीय शक्तियों में इसी प्रकार की विभिन्नताओं के होने के कारण उनके नाम विभिन्न प्रकार के रखे गए हैं।

रेडियो यंत्र की सुई घुमाने से उन विविध स्थानों की ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं जो आपस में बहुत भिन्न हैं। सुई के घुमाने से यंत्र के भीतर ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि पहले उसके भीतर जो गतिविधि काम कर रही थी वह बंद हो जाती है और नए प्रकार की गतिविधि आरंभ हो जाती है, जिससे पहले जिस स्टेशन की ध्वनियाँ सुनाई पड़ रही थीं, वे बंद होकर नया स्टेशन सुनाई पड़ने लगता है। मनुष्य शरीर की स्थिति को भी साधनात्मक कर्मकांडों द्वारा इसी प्रकार परिवर्तित कर दिया जाता है कि वह कभी किसी देवशक्ति के और कभी अन्य देवशक्ति के अनुकूल बन जाती है। साधना काल में साधक के रहन-सहन, आहार-विहार, दिनचर्या, विचार, चिंतन, ध्यान, संयम, कर्मकांड आदि के ऐसे प्रबंध एवं नियंत्रण कायम किए जाते हैं, जिनके कारण उसकी मनोभूमि एक विशेष दिशा में काम करने योग्य बन जाती है। साधना काल के नियमोपनियमों का, प्रतिबंधों या नियंत्रणों का कोई साधक पूरी तरह पालन करे तो उसकी मशीन इतनी सूक्ष्म हो जावेगी कि इच्छित देवशक्ति से संबंध स्थापित कर सके।

गायत्री का तत्त्वदर्शन

सामान्यतया गायत्री को पूजा-उपासना के लिए प्रयुक्त होने वाला कोई मंत्र विशेष माना जाता है और समझा जाता है कि उसका

जप करने से सुख-सुविधाओं के संवर्द्धन एवं अनिष्ट निवारण में सहायता मिलती है। यह मान्यता उस महाशक्ति का प्रारंभिक परिचय मात्र है। वस्तुतः गायत्री एक महान विज्ञान है जिससे चेतना के परिष्कार और परिष्कृत आत्मबल के साधक को साधना और परिस्थितियों का सदुपयोग कर सकना संभव होता है। इस स्तर पर पहुँचने के लिए ही विभिन्न साधनाएँ की जाती हैं जिनमें गायत्री उपासना का महत्त्व सर्वोपरि है।

भौतिक विज्ञान के संबंध में सामान्य एवं असामान्य जानकारी सर्व साधारण को किसी-न-किसी रूप में होती है। इसी के सहारे आजीविका उपार्जन से लेकर जीवन व्यवहार एवं लोक व्यवहार के अनेकानेक प्रयोजन पूरे किए जाते हैं। आत्मविज्ञान यों इन दिनों उपेक्षित है, फिर भी उसका महत्त्व पदार्थ विज्ञान से कहीं अधिक है। चेतना ही पदार्थ का उत्पादन एवं उपयोग करती है। यदि वह स्वयं ही पिछड़ेपन से ग्रसित होगी तो प्रयत्न भी उथले स्तर के होंगे और उनका प्रतिफल भी स्वल्प परिमाण में ही उपलब्ध होगा। चेतना का स्तर ऊँचा रहने से ही मनुष्य अभीष्ट प्रयोजनों में बढ़ी-चढ़ी सफलताएँ प्राप्त करता है।

आत्मविज्ञान ही ब्रह्म विद्या है। इसी को गायत्री कहते हैं। गायत्री का तत्त्वज्ञान रहस्यमय है। उसे जो जितनी अच्छी तरह समझने में, हृदयंगम करने में सफल होता है, उसकी विभूति-संपदा भी उसी अनुपात से बढ़ी-चढ़ी होती है। शास्त्र कहता है—

यो ह वा एवं-वित् स ब्रह्मवित्पुण्यां च कीर्तिं लभते सुरभींश्च गन्धान्। सोऽपहतपाप्मानन्तां श्रियमश्नुते य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेवमेतां वेदानां मातरं सावित्री-संपदमुपनिषदमुपास्त इति ब्राह्मणम्॥

—गायत्री उपनिषद्

जो वेदमाता गायत्री को ठीक तरह जान लेता है, वह ब्रह्मवृति, पुण्य, कीर्ति एवं विभूतियों को प्राप्त करता है और निर्मल अंतःकरण होकर परम श्रेय का अधिकारी बनता है।

गोपथ ब्राह्मण में गायत्री के २४ अक्षरों को २४ स्तंभों का दिव्य तेज बताया गया है। समुद्र में जहाजों का मार्गदर्शन करने के लिए जहाँ-तहाँ प्रकाश-स्तंभ खड़े रहते हैं। उनमें जलने वाले प्रकाश को देखकर नाविक अपने जलपोत को सही रास्ते से ले जाते हैं और चट्टानों से टकराने एवं कीचड़ आदि में धँसने से बच जाते हैं। इसी प्रकार गायत्री के २४ अक्षर, २४ प्रकाश-स्तंभ बनकर प्रजा की जीवन नौका को प्रगति एवं समृद्धि के मार्ग पर ठीक तरह चलते रहने की प्रेरणा करते हैं। आपत्तियों से बचाते हैं और अनिश्चितता को दूर करते हैं।

गोपथ के अनुसार गायत्री चारों वेदों की प्राण, सार, रहस्य एवं तन है। साम संगीत का यह रथंतर आत्मा के उल्लास को उद्वेलित करता है। जो इस तेज को अपने में धारण करता है, उसकी वंश परंपरा तेजस्वी बनती चली जाती है। उसकी पारिवारिक संतति और अनुयायियों की शृंखला में एक-से-एक बढ़कर तेजस्वी, प्रतिभाशाली उत्पन्न होते चले जाते हैं। श्रुति कहती है—

तेजो वै गायत्री छन्दसां रथन्तरम् साम्नाम् तेजश्चतुर्विंशस्ते माना तेज एवं सत्सम्यक् दधाति पुत्रस्थ पुत्रस्तेजस्वी भवति।

—गोपथ

गायत्री सब वेदों का तेज है। सामवेद का यह रथंतर छंद ही २४ स्तंभों का यह दिव्य तेज है। इस तेज को धारण करने वाले की वंश-परंपरा तेजस्वी होती है।

चतुर्विंशाक्षरी विद्या पर तत्व विनिर्मिता।
तत्करातु यात्कार पर्यंतं शब्द ब्रह्मस्वरूपिणी॥

—गायत्री तंत्र

तत् से लेकर प्रचोदयात् के २४ अक्षरों वाली गायत्री पर-तत्त्व अर्थात परा विद्या से ओत-प्रोत हो।

गायत्री के २४ अक्षर आठ-आठ शब्दों में विभाजित हैं। इन तीन पादों का अपना महत्त्व है। तीन पाद तीनों लोकों की समस्त विभूतियाँ अपने अंदर धारण किए हुए हैं। जो उन्हें ठीक तरह जान-समझ लेता है, उन्हें प्रयोग में लाने की प्रक्रिया समझ लेता है, वह त्रयलोक विजयी की तरह आनंदित होता है।

भूमिरन्तरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरा ॐ ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदुहैवास्या एतत्स यावदेषु लोकेषु तावद्ध जयति योऽस्या एत देवंपदं वेद॥

—वृहदारण्यक ५/१४/१

अर्थात—भूमि, अंतरिक्ष, द्यौ ये तीनों गायत्री के प्रथम पाद के आठ अक्षरों के बराबर हैं। जो गायत्री के इस प्रथम पाद को जान लेता है, सो तीनों लोकों को जीत लेता है।

वृहदारण्यक उपनिषद में गायत्री के तीन चरणों के द्वारा उपलब्ध हो सकने वाले प्रतिफलों का उल्लेख मिलता है। जिससे जाना जाता है कि इस महामंत्र का आश्रय लेने वाला साधक क्या कुछ प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

तत्सवितुर्वरेण्यम् मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधीर्भूः स्वाहा भर्गो देवस्य धीमहि मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ॐ रजः मधुद्यौरस्तु नः पिता भुवः स्वाहा धियो यो नः प्रचोदयात् मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ-अस्तु सूर्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः स्वः स्वाहेति सर्वां च सावित्रीमन्वाह सर्वाश्च मधुमतीरहमेवेदॐ सर्वं भूयासं भूर्भुवः स्वः स्वाहा।

—वृहदारण्यक ०६.३.६

—(**तत्सवितुर्वरेण्यं**) मधुर वायु चले, नदी और समुद्र रसमय होकर रहें। औषधियाँ हमारे लिए मंगलमय हों। द्युलोक हमें सुख प्रदान करें।

—(**भर्गो देवस्य धीमहि**) रात्रि और दिन हमारे लिए सुखकारक हों। पृथ्वी की रज हमारे लिए मंगलमय हो। द्युलोक हमें सुख प्रदान करें।

—(**धियो यो नः प्रचोदयात्**) वनस्पतियाँ हमारे लिए रसमयी हों। सूर्य हमारे लिए सुखप्रद हो, उसकी रश्मियाँ हमारे लिए कल्याणकारी हों। सब हमारे लिए सुखप्रद हों। मैं सबके लिए मधुर बन जाऊँ।

यों उपर्युक्त मंत्र में प्रार्थना जैसी शब्दावली का प्रयोग हुआ है, पर उसमें जिस भावना का संकेत है, उसे सहज समझा जा सकता है। प्रथम पाद में वायु, नदी, समुद्र, रस और औषधियों के, दूसरे पाद में दिन, रात्रि, पृथ्वी, समृद्धि एवं द्युलोक के, तीसरे पाद में धन-धान्य एवं ऋतुओं के अनुकूल होकर सुख-वैभव प्रदान करने की चर्चा है और साधक को इतना मधुर-सुसंस्कृत बन सकने का संदेश है जिससे उसके लिए सब कोई अनुकूल एवं मधुर बन सकें।

गायत्री साधना से इस प्रकार की उपलब्धियों की कामना मात्र भावुकता की ७४ प्रतिक्रिया नहीं है। महाभारत के भीष्म पर्व में २४ अक्षर वाली गायत्री के अक्षरों का रहस्य, मर्म, प्रकाश, प्रभाव एवं परिणाम जानने वालों को महान कल्याणकारी कहा गया है और पतन एवं विनाश का कष्ट न सहने का आश्वासन दिया गया है।

'गायत्री संहिता' में गायत्री के २४ अक्षरों की शाब्दिक संरचना को रहस्ययुक्त बताया गया है और उन्हें ढूँढ़ निकालने के लिए विज्ञजनों को प्रोत्साहित किया गया है। शब्दार्थ की दृष्टि से गायत्री

की भाव-प्रक्रिया में कोई रहस्य नहीं है। सद्बुद्धि की प्रार्थना उसका प्रकट भावार्थ एवं प्रयोजन है। वह सीधी-सादी-सी बात है, जो अन्यान्य वेदमंत्रों तथा आप्तवचनों में अनेकानेक स्थानों पर व्यक्त हुई है। अक्षरों का रहस्य इतना ही है कि साधक को सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रेरणा को जो जितना ग्रहण कर लेता है, वह उसी अनुपात से सिद्धपुरुष बन जाता है। कहा गया है—

चतुर्विंशतिवर्णैर्या गायत्री गुम्फिता श्रुतौ।
रहस्यमुक्तं तत्रापि दिव्यैः रहस्यवादिभिः॥

—*गायत्री संहिता*

वेदों में जो गायत्री चौबीस अक्षरों में गुँथी हुई है, विद्वान लोग इन चौबीस अक्षरों के गूँथने में बड़े-बड़े रहस्यों को छिपा बतलाते हैं।

गायत्री की सिद्धियाँ भीतर से आती और बाहर प्रकट होती हैं। इस तथ्य को जितनी जल्दी, अच्छी तरह समझा जा सके उतना ही उत्तम है। यह भ्रम मिटना ही चाहिए कि पूजा के बदले किसी पर आकाश से वैभव टपकता है। वस्तुतः सत्प्रवृत्तियाँ ही लोक व्यवहार में सिद्धियाँ बनकर प्रकट होती हैं—

प्रादुर्भवन्ति वै सूक्ष्माश्चतुर्विंशतिशक्तयः।
अक्षरेभ्यस्तु गायत्र्या मानवानां हि मानसे॥

—*गायत्री संहिता*

मनुष्य के अंतःकरण में गायत्री के चौबीस अक्षरों से चौबीस सूक्ष्म शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

गायत्री के 'धीमहि प्रचोदयात्' शब्द इन्हीं प्रेरणाओं से भरे पड़े हैं। 'धीमहि' अर्थात धारण करना। यह धारणा शिथिल, निर्जीव, निष्क्रिय नहीं, वरन् इतनी प्रचंड होनी चाहिए, जिसे प्रेरणा कहा जा सके। 'प्रचोदयात्' में प्रेरणा भरी अंतःस्थिति का ही महत्त्व बताया गया है।

गायत्री महामंत्र के परम सामर्थ्यवान २४ अक्षर

गायत्री महामंत्र में जिन २४ अक्षरों का प्रयोग किया गया है, उसमें मंत्र शास्त्र की, शब्द विज्ञान की रहस्यमय प्रक्रिया प्रयुक्त हुई है। अर्थ की अभिलाषा के लिए इनसे भी सरल और भावपूर्ण शब्दों का प्रयोग हो सकता है। ४ वेदों में लगभग ७० मंत्र ऐसे हैं जो गायत्री मंत्र में दी गई शिक्षा और प्रेरणा को प्रस्तुत करते हैं, पर उनका महत्त्व गायत्री जैसा नहीं माना जाता। इस महामंत्र की गरिमा में उसमें प्रयुक्त हुए क्रम का असाधारण महत्त्व है।

सितार के तारों का अमुक क्रम में बजने पर उनमें से अमुक राग की झंकृति निकलती है। यदि उँगली फिराने का क्रम बदल दिया जाए तो दूसरी ध्वनि एवं रागिनी निकलने लगेगी। तारों पर हाथ रखने का क्रम, दबाव एवं उतार-चढ़ाव का परिवर्तन उस एक ही सितार यंत्र में से अगणित प्रकार की राग-ध्वनियाँ प्रस्तुत करता है। ठीक उसी प्रकार शब्दों का उच्चारण जिस क्रम एवं शृंखला से किया जाता है उसके अनुसार सूक्ष्म आकाश में, ईथर में, विभिन्न प्रकार की ध्वनि लहरियाँ प्रादुर्भूत होती हैं। इनका स्पर्श मानव मस्तिष्क में अलग-अलग प्रकार से प्रभाव उत्पन्न करता है।

शब्दों का सामान्य प्रभाव उनके अर्थों के आधार पर मस्तिष्क ग्रहण करता है। पर सूक्ष्म मस्तिष्क पर शब्दों के अर्थ का नहीं, उनके द्वारा उत्पन्न हुई स्पंदन-स्फुरणाओं का प्रभाव पड़ता है। एक शब्द शृंखला को, वाक्य को, यदि उलट-पुलटकर बोला जाए तो अर्थ में अंतर आएगा। केवल व्याकरण संबंधी अशुद्धि मानी जाएगी। किंतु इस सामान्य-सी उलट-पुलट से सूक्ष्म आकाश में स्पंदन क्रम बहुत बदल जाएगा और उसके रहस्यमय प्रभाव में भारी अंतर रहेगा। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए वेदों के निर्माता ने इस बात का पूरा-पूरा

ध्यान रखा है कि हर मंत्र में उसके अक्षर इस क्रम में सँजोये जाएँ जिससे वह शक्ति प्रखर स्तर पर प्रादुर्भूत हो सके जिसके लिए उसकी रचना की गई। मंत्र विज्ञान का सारा ढाँचा उसी तथ्य पर खड़ा हुआ है।

अर्थ न जानने पर भी मंत्र अपना प्रभाव प्रस्तुत करते हैं। अधिकांश मंत्रों का अर्थ उनके प्रयोक्ता जानते भी नहीं और न उसकी आवश्यकता समझते हैं। अर्थ न जानने पर भी वे उतना ही प्रभाव प्रस्तुत करते हैं, जितना अर्थ जानने पर। अर्थ का प्रभाव विचारणा, शिक्षा एवं भावना की दृष्टि से अवश्य है, पर जहाँ प्रकृति के सूक्ष्म अंतराल में स्पंदन प्रक्रिया का वैज्ञानिक संबंध है, वहाँ शब्द का ठीक ढंग से उच्चारण करना भी अभीष्ट प्रयोजन को पूरा कर देता है। यहाँ यह नहीं कहा जा रहा है कि गायत्री का या दूसरे मंत्रों का अर्थ नहीं जाना जाए। जानने से शिक्षणात्मक एवं बौद्धिक लाभ भी है, पर यदि यह अर्थ विदित न हो तो भी शब्द शक्ति अपना वैज्ञानिक प्रयोजन अपने ढंग से करती ही रहेगी, यहाँ इतना भर कहा जा रहा है। यही तथ्य है जिसके आधार पर यज्ञ, अनुष्ठान एवं कर्मकांडों के अवसर पर प्रयुक्त हुए मंत्रों का अर्थ न जानने पर भी उस आयोजन में सम्मिलित नर-नारी लाभान्वित होते हैं। वेद परायण यज्ञों में कितने लोग सब मंत्रों का अर्थ समझते हैं? न जानने पर भी आयोजनों में सम्मिलित लोग भरपूर लाभ उठाते हैं।

गायत्री महामंत्र में प्रयुक्त २४ अक्षर जब उच्चारित किए जाते हैं तो सर्वप्रथम मुख के विभिन्न अवयव, दंत, ओठ, जिह्वा, तालु आदि का परिचालन होता है। इन शब्द-मूल स्थलों की गतिविधियाँ शरीर में विभिन्न स्थानों पर अवस्थित शक्ति-केंद्रों पर प्रभाव डालती हैं और उन्हें प्रसुप्त स्थिति से जागृति में परिणत कर देती हैं। यहाँ हमें ये जानना होगा कि इस देव-देवालय के विभिन्न भागों पर ऐसे शक्ति संस्थान बने हुए हैं जिन्हें ऋद्धि-सिद्धियों का रत्न-भंडार कहा जा

सकता है। वे सामान्य व्यक्तियों के शरीरों में मूर्च्छित पड़े रहते हैं। इसलिए उनका जीवन पशु-पक्षियों एवं कीट-पतंगों जैसा आहार, निद्रा, भय, मैथुन की जीव प्रवृत्तियों तक सीमित रह जाता है, किंतु यदि कहीं उन मूर्च्छित शक्ति स्रोतों को किसी प्रकार जगाया जा सके तो सामान्य-सा दीखने वाला, शरीर को धारण करने वाला देखते-देखते महापुरुष, सिद्धपुरुष एवं देव भूमिका में विचरण करने वाला बन सकता है। गायत्री मंत्र में प्रयुक्त अक्षरों का उच्चारण इन शक्ति कोशों को प्रभावित करता है और उसकी प्रसुप्त क्षमता को जाग्रत् करके आत्मबल की संपन्नता से लाभान्वित बनता है।

षटचक्रों का नाम अध्यात्म विद्या के प्रेमियों ने सुना होगा। मेरुदंड के आदि से लेकर अंतिम सिरे तक पहुँचते-पहुँचते छह स्थानों पर छह शक्ति संस्थान पाए जाते हैं। इनमें ऐसी विद्युत धाराओं का तारतम्य है जो निखिल आकाश में व्याप्त प्रचंड शक्तियों के साथ अपना संबंध बनाए रख रही हैं। यह षटचक्र-शक्ति संस्थान जागत् होते हैं तो उनकी सक्रियता बढ़ जाती है और वह बढ़ी हुई सक्रियता प्रकृति-प्रवाह में से अपने काम की धाराओं को पकड़कर अभीष्ट प्रयोजन के लिए अपने समीप खींच लेती है। जिस प्रकार अजगर अपने नेत्रों की विद्युत धारा से छोटे-मोटे जीवों को अपनी ओर खींच लेता है और वे बेचारे अनायास ही घिसटते हुए उसके मुख में चले जाते हैं, उसी प्रकार षटचक्रों के शक्ति संस्थान निखिल ब्रह्मांड में संव्याप्त एक-से-एक बढ़ी-चढ़ी विभूतियों को अपनी ओर आकर्षित करके उनके अधिपति बन जाते हैं। सिद्ध पुरुषों में ऐसी कितनी ही विशेषताएँ-विभूतियाँ पाई जाती हैं, जिनसे वे सामान्य व्यक्तियों के स्तर की तुलना में कहीं अधिक सामर्थ्यवान एवं सुविकसित सिद्ध होते हैं। अष्टसिद्धि, नवनिधि का वर्णन योग- शास्त्रों में मिलता है।

साधना मार्ग पर चलने वाले कितने ही व्यक्तियों में कुछ अलौकिक विशेषताएँ देखी जाती हैं, उनका वैज्ञानिक आधार यही है कि साधना द्वारा उस साधक ने अपने शरीर में सन्निहित शक्ति संस्थानों को जगाया और उनसे ब्रह्मांड-व्यापी विभूतियों के आदान-प्रदान का संबंध जोड़ लिया।

षटचक्र प्रख्यात हैं। उनके अतिरिक्त २४ विशिष्ट और २४ सामान्य शक्ति-केंद्र भी इस शरीर में विद्यमान हैं। इन्हें उपत्यिकाएँ और विभीटिकाएँ कहते हैं। २४ उपत्यिकाएँ छोटे-छोटे षटचक्रों जैसे शक्ति संस्थान ही हैं। यह शरीर के विभिन्न स्थानों पर विद्यमान हैं। गायत्री महामंत्र में २४ अक्षर जब स्पंदित होते हैं, तब मुख में उत्पन्न हुई गतिविधियों का सूक्ष्म प्रभाव उन उपत्यिकाओं के ऊपर पड़ता है और वे स्वसंचालित हलचल बनाकर उन्हें प्रसुप्त स्थिति से जाग्रत् स्थिति में परिणत करने का कार्य आरंभ कर देती हैं। अधिक जप करने की निरंतर चल रही प्रक्रिया पत्थर पर घिसने वाली रस्सी की तरह प्रभाव डालती रहती है और वे संस्थान जैसे-जैसे अपनी मूर्च्छा दूर करके चेतन भूमिका में आते-जाते हैं, वैसे-वैसे उस उपासना में संलग्न व्यक्ति अपने आप को अलौकिक शक्तियों से सुसंपन्न अनुभव करता हुआ आत्मविकास की ओर बढ़ता चला जाता है।

शरीर के किस स्थान पर कौन उपत्यिका उपस्थित है और गायत्री मंत्र का कौन-सा अक्षर उसे प्रभावित करने का प्रयोजन पूर्ण करता है, इसका दिग्दर्शन अगले पृष्ठ पर छपे चित्र में दिया गया है। जिस प्रकार टाइप राइटर की कुंजियों पर उँगली दबाने से उससे जुड़ी तीली उठती है और कागज पर टकराकर अपना अक्षर छाप देती है। इसी प्रकार मुख से स्पंदित हुए गायत्री मंत्र के २४ अक्षर एक-एक उपत्यिकाओं पर प्रभाव डालते हैं और वे वैज्ञानिक व्यवस्था के आधार पर सूक्ष्म होने लग जाती है।
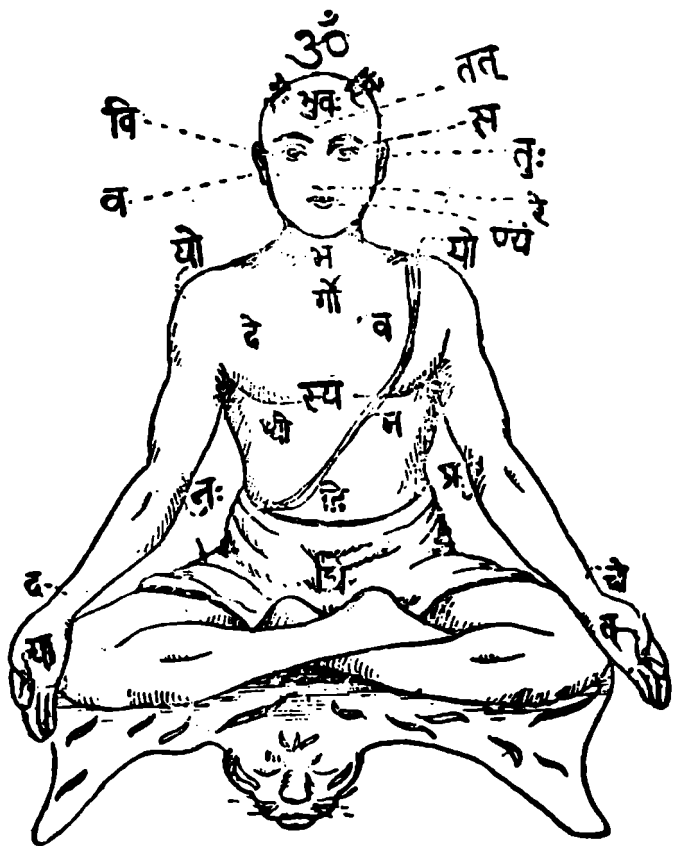
आधुनिक चिकित्साशास्त्रियों ने नवीनतम खोजों के आधार पर मानव शरीर में अवस्थित कुछ विलक्षण ग्रंथियों की खोज की है। ये छोटी–छोटी गाँठ, शरीर के विभिन्न स्थानों पर पड़ी हुई निरर्थक जैसी दीखती हैं। उनसे पसीना जैसा एक रस स्त्रवित होता रहता है, उसे 'हारमोन' कहते हैं। यह 'हारमोन' स्त्राव रक्त में मिलते हैं तो विभिन्न प्रकार की विलक्षणताएँ पैदा करते हैं। सामान्यत: सभी

शरीर हाड़-मांस की दृष्टि से एक ही तरह के हैं। जीवनयापन और आहार-विहार के तौर-तरीकों में थोड़ा-बहुत ही अंतर होता है। फिर एक-दूसरे में जमीन-आसमान जैसा अंतर पाया जाता है। उसका क्या कारण है? इस प्रश्न का उत्तर शरीरशास्त्री उन हारमोनों की विचित्रता और विलक्षणता बताते हैं। उनका कहना है कि अवयव एवं आहार-विहार का क्रम भले ही एक-सा हो, मनुष्यों में यह सूक्ष्म ग्रंथियाँ असामान्य स्तर की होती हैं और उनसे स्रवित होने वाले हारमोन, न्यूनाधिक होने के कारण मनुष्यों में विलक्षणता पैदा कर देते हैं। शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक एवं आत्मिक विशेषताओं का उत्तरदायित्व वे इन हारमोन ग्रंथियों पर आरोपित करते हैं और साथ ही यह भी कहते हैं कि इन शक्ति संस्थानों पर ओषधि या शल्यक्रिया कोई काम नहीं करती है। इनकी गतिविधियों को घटाना-बढ़ाना यदि किसी माध्यम से संभव हो सकता है तो उसमें मानवीय विद्युत-विज्ञान के विज्ञानी ही सफल हो सकते हैं, शरीरशास्त्री नहीं।

यह आत्मिक समर्थता-अलौकिकता किसी को उपहार में नहीं मिलती, वरन् प्रबल पुरुषार्थ द्वारा अपने भीतर उत्पन्न करनी पड़ती है। उपार्जन-उत्पादन का नाम साधना अथवा तपश्चर्या है। यह अंधविश्वास नहीं, वरन् एक विशुद्ध विज्ञान है जिसकी सत्यता प्रयोग-परीक्षण की कसौटी पर कसी जा सकती है। गायत्री उपासना इस मार्ग पर चलने की एक पूर्ण सुव्यवस्थित एवं पग-पग पर परीक्षित क्रियापद्धति है। उसका वास्तविक शुभारंभ २४ अक्षरों को बार-बार दोहराने से, जप करने से ही होता है। क्रमबद्ध रूप से बार-बार किसी शब्द गुच्छक, मंत्र का उच्चारण पुनरावृत्ति करते रहने से एक विशिष्ट प्रकार का वर्तुल बन जाता है और उस आधार पर एक स्वसंचालित शक्ति-प्रवाह प्रादुर्भूत होने लगता है। यह वर्तुल

प्रवाह बाह्य जगत में अभीष्ट स्तर की हलचल पैदा करता है और शरीर के भीतर की प्रसुप्त उपत्यिकाओं को एक ऐसी क्रमबद्ध प्रक्रिया के साथ शनैः-शनैः सजग करने लगता है, जिसमें कोई गड़बड़ी न हो। तांत्रिक उपासनाएँ तीव्र एवं तीक्ष्ण होती हैं। उनसे शक्ति-केंद्रों के जागरण में शीघ्रता तो होती है, पर साथ ही यह खतरा भी बना रहता है कि द्रुतगामी हलचल आत्मिक क्षेत्र में हड़बड़ी पैदा न कर दें और साधक को किसी अप्रत्याशित जोखिम का सामना करना पड़े। दक्षिण मार्गी उपासनाओं में सफलता कुछ देर से तो मिलती है, पर किसी प्रकार का खतरा प्रस्तुत होने की आशंका नहीं रहती है। जप ऐसा ही प्रारंभिक प्रयोग है। उसका सहारा लेकर आत्मशक्ति के अक्षय भंडार से पूर्ण उपत्यिकाओं को शांति एवं सुव्यवस्था के साथ जगाया जा सकता है। जप के द्वारा जो शक्ति की वर्तुल प्रवाहधारा प्रादुर्भूत होती है, वह अपना काम करती रहती है और समयानुसार उसका आशाजनक प्रतिफल उत्पन्न होता है।

गायत्री तत्त्वज्ञान-गायत्री साधना की सफलता के रहस्य गोपथ ब्राह्मण में अच्छी तरह समझाए गए हैं। उसके अंतर्गत मौद्गल्य और मैत्रेय संवाद में गायत्री तत्त्वदर्शन और ३२-३३-३४-३५-३६ कंडिकाओं में विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

मैत्रेय पूछते हैं—"**सवितुर्वरेण्यमं भर्गो देवस्य कवयः किंस्वित् आहुः**" अर्थात् हे भगवन् ! यह बताइए कि "**सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य**" इसका अर्थ सूक्ष्मदर्शी विद्वान क्या करते हैं ?

इसका उत्तर देते हुए मौद्गल्य कहते हैं—"**सविता प्रविश्य ताः प्रचोदयात् याभिः एति।**" अर्थात—सविता की आराधना इसलिए है कि वे बुद्धि क्षेत्र में प्रवेश करके उसे शुद्ध करते और सत्कर्मपरायण बनाते हैं।

वे आगे और भी कहते हैं—"**कवय: देवस्य सवितु: वरेण्यं भर्ग: अन्नम् आहु:**" अर्थात—तत्त्वदर्शी सविता का आलोक अन्न में देखते हैं। अन्न की साधना में जो प्रखर पवित्रता बरती जाती है, उसे सविता का अनुग्रह समझा जा सकता है।

आगे और भी स्पष्ट किया गया है—"**मन: एव सविता, वाक् सावित्री**" अर्थात—परम तेजस्वी सविता जब मन: क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो जिह्वा को प्रभावित करते हैं और वचन और भोजन के दोनों प्रयोजनों में जिह्वा पवित्रता का परिचय देती है। इस तथ्य को आगे और भी अधिक स्पष्ट किया गया है—"**प्राण एव सविता अन्नं सावित्री, यत्र ह्येव प्राणस्तदन्नम् यत्र वा अन्नं तत् प्राण इत्येते।**" अर्थात—सविता प्राण है और सावित्री अन्न। जहाँ अन्न है, वहाँ प्राण होगा और जहाँ प्राण है वहाँ अन्न।

प्राण जीवन, जीवट, संकल्प एवं प्रतिभा का प्रतीक है। यह विशिष्टता पवित्र अन्न की प्रतिक्रिया है। प्राणवान व्यक्ति पवित्र अन्न ही स्वीकार करते हैं एवं अन्न की पवित्रता को अपनाए रहने वाले प्राणवान बनते हैं।

इस प्रतिपादन में गायत्री महाशक्ति के अवतरण के लिए मन की, बुद्धि की, वाणी की, अन्न की पवित्रता को अत्यधिक आवश्यक माना गया है। इसके बिना मात्र गायत्री की आराधना, अपंग-एकांगी रह जाती है और अभीष्ट फल देने में असमर्थ रहती है।

सविता सूक्ष्म भी है और दूरवर्ती भी, उसका निकटतम प्रतीक यज्ञ है। यज्ञ को सविता कहा गया है। उसकी पूर्णता भी एकाकीपन में नहीं है। सहधर्मिणी सहित यज्ञ ही समग्र एवं समर्थ माना गया है। यज्ञपत्नी दक्षिणा है। दक्षिणा को सावित्री कह सकते हैं। ३३वीं कंडिका में कहा गया है—"**यज्ञ एव सविता, दक्षिणा सावित्री**" अर्थात यज्ञ सविता है और दक्षिणा सावित्री। इन दोनों को अन्योन्याश्रित माना

जाना चाहिए। यज्ञ के बिना दक्षिणा की और दक्षिणा के बिना यज्ञ की सार्थकता नहीं होती। यह यज्ञ का तत्त्वज्ञान उदार परमार्थ प्रयोजनों में है। यज्ञ का तात्पर्य सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्द्धन में योगदान करना है। गायत्री जप की पूर्णता यज्ञ-दक्षिणा कृत्य द्वारा होती है। इसका तत्त्वज्ञान यह है कि पवित्र यज्ञीय जीवन जिया जाए, साथ ही सविता देवता को प्रसन्न करने वाली उसकी प्रिय पत्नी दक्षिणा का भी सत्कार किया जाए। यहाँ दुष्प्रवृत्तियों के परित्याग और सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्द्धन करने के निमित्त किए गए संकल्पों को ही भाव भरी दक्षिणा—देव दक्षिणा समझा जाना चाहिए।

गायत्री उपासना में सफलता-असफलता मिलने की पृष्ठभूमि में शास्त्रोक्त क्रिया-कृत्यों का जितना महत्त्व है उससे भी अधिक उस तत्त्वज्ञान का है जिसमें साधक को व्यक्तित्व परिष्कृत करने के लिए मन, बुद्धि और आहार को पवित्र बनाने तथा सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन में प्रबल प्रयत्न करने वाली बात भी सम्मिलित है।

गायत्री उपासना की दिनचर्या, क्रम, पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिसे ब्रह्मकर्म, तप, साधन कहा जा सके। कहा गया है कि— "**इदं ब्रह्म ह श्रियं प्रतिष्ठाम् आयतनम् ऐक्षत,**" अर्थात—ब्रह्मा ने गायत्री में शोभा, संपदा और कीर्ति के सभी तत्त्व भर दिए, किंतु साथ ही यह भी प्रावधान रखा कि "**सावित्र्या ब्राह्मणं सृष्ट्वा तत् सावित्रीं पर्य्यंदधात्**" अर्थात—उसने गायत्री को धारण कर सकने में समर्थ ब्राह्मण को सृजा और उसे सावित्री के साथ बाँध दिया। ब्राह्मण वंश से नहीं, ऐसे कर्म करने से बनता है, जिनमें सत्य और तप का व्रत जुड़ा हुआ है। गोपथ की इसी कंडिका में इस तथ्य को प्रकट करते हुए कहा गया है—"**कर्मणा तपः, तपसा सत्यम्, सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणम्, ब्राह्मणेन व्रतम् समदधात्**" अर्थात सत्कर्मों को

तप कहते हैं—तप से सत्य की प्राप्ति होती है, सत्य ही ब्रह्म है, ब्रह्म को धारण करने वाला ब्राह्मण-ब्राह्मण वह जो आदर्शपालन का व्रत धारण करे—ऐसे ही व्रतधारी ब्राह्मण को गायत्री की प्राप्ति होती है।

शालीनता एवं तपश्चर्या की बात पढ़ते, सुनते या सोचते रहने से काम नहीं चलता। सदाचरण को व्रत रूप में जीवनक्रम में अविच्छिन्न रूप से समाविष्ट रखा जाना चाहिए। इस परिपालन के आधार पर ही ब्रह्मतेज प्रखर होता है और गायत्री-तत्त्व की उपलब्धि में कृत-कृत्य होने का अवसर मिलता है। मौद्‌गल्य कहते हैं—"**व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितः भवति, अशून्यः भवति, अविच्छिन्नः भवति, अविच्छिन्नः अस्य तन्तुः, अविच्छिन्नं जीवनं भवनं भवति**" अर्थात व्रत से ब्राह्मणत्व मिलता है—जो ब्राह्मण है वही मनीषी है—ऐसा व्यक्ति समृद्ध और समर्थ रहता है, उसकी परंपरा छिन्न नहीं होती और मरण सहज पड़ता है।

गायत्री का तत्त्वज्ञान और उसके अनुग्रह का रहस्य बताते हुए महर्षि मौद्‌गल्य ने विस्तारपूर्वक यही समझाया है कि चिंतन और चरित्र की दृष्टि से—संयम और परमार्थ की दृष्टि से व्यक्तित्व को पवित्र बनाने वाले ब्रह्मपरायण व्यक्ति ही गायत्री के तत्त्ववेत्ता हैं और उन्हीं को वे सब लाभ मिलते हैं जिनका वर्णन गायत्री की महिमा एवं फलश्रुति का वर्णन करते हुए स्थान-स्थान पर प्रतिपादित किया गया है। इस रहस्य के ज्ञाता की ओर संकेत करते हुए गोपथ ब्राह्मण का ऋषि कहता है—

"**यः एवं वेद यः च एवं विद्वान् एवं एतम् सावित्र्याः प्रथमं पाद व्याचष्टे**" जो पवित्र जीवन के साथ सावित्री का आश्रय लेता है, वही ज्ञानी है, वही मनीषी है, उसी को पूर्णता प्राप्त होती है।

मानवी सत्ता से लेकर विस्तृत ब्रह्मांड में समान रूप से व्याप्त त्रिपदा गायत्री का भुवनेश्वरी रूप सर्वविदित है। गायत्री बीज 'ॐकार' है। उसकी सत्ता तीनों लोक (भूः भुवः स्वः) लोकों में संव्याप्त है। साधक के लिए उसके २४ अक्षर सिद्धियों एवं उपलब्धियों से भरे-पूरे हैं। इन अक्षरों में सन्निहित प्रेरणाओं को अपनाने वाले साधक निश्चित रूप से आप्तकाम बनते हैं और उस तरह खिन्न-उद्विग्न नहीं रहते जिस तरह की लिप्सा-लालसाओं की अनुपयुक्त कामनाओं की आग में जलते-भुनते हुए सांसारिक लोग शोक-संताप सहते हैं। इस तथ्य को 'रुद्रयामल' में इस प्रकार प्रकट किया गया है—

गायत्री त्रिपदा दैवी त्र्यक्षरी भुवनेश्वरी।
चतुर्विंशाक्षरा विद्या सा चैवाभीष्ट देवता॥

—रुद्रयामल

"तीन पद वाली तथा तीन अक्षर (भूः भुवः स्वः) युक्त समस्त भुवनों की अधिष्ठात्री २४ अक्षर वाली परा विद्या रूप गायत्री देवी-सबको इच्छित फल देने वाली है।"

स्पष्ट है कि गायत्री के तत्त्वज्ञान को हृदयंगम करके उसके अनुसार जीवन पद्धति अपनाने वाले साधकों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

□

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा